



महाराणा प्रतापसिंह



ओंकार आदर्श चरित माला का ६ वां पुष्प

## प्रताप चारैताः त

( संक्षिप्त चरित और विचारों का निदर्शन )

वत्तन पर हम फिदा होंगे

वत्तन प्यारा हमारा है ।

यही महबूब है अपना

हम इसके यह हमारा है ।

—:०:—

लेखक

पं० नन्दकुमार देव शर्मा

[ भूतपूर्व प्रधान सम्पादक "विहार बन्धु" आर्य मित्र" संयुक्त  
सम्पादक सद्धर्म प्रचारक, सहायक मन्त्री हिन्दी-  
साहित्य-सम्मेलन आदि ]

सम्पादक

स्वर्गीय पण्डित ओंकारनाथ वाजपेयी

प्रकाशक

कार्यकारी पं० विश्वम्भरनाथ वाजपेयी एस० आर० बी०

अध्यक्ष

ओंकार प्रेस एवं ओंकार बुकडिपो प्रयाग ।

—:०:—

प्रकाशित दि. २५/१२/२३ वाजपेयी के प्रकाशित से ओंकार प्रेस प्रयाग में छपा

प्रकाशक २५/१२/२३ सम १६२३ [ मुख्य १० ]



## प्रकाशक की भूमिका ।

आज हम अपने प्रिय पाठकों के समक्ष महाराणा प्रताप रैसंह की जीवनी तृतीयवार प्रकाशित करते हैं इसमें सन्देह नहीं, कि जनता ने हमें पूर्ण रूप से उत्साहित किया है क्यों कि इस आदर्श चरित माला में कई पुस्तकें तो आठ बार तक प्रकाशित हुईं और वह हाथों हाथ बिक गईं वास्तव में जनता के अन्दर आदर्श एवं महा पुरुषों की जीवनी पढ़ने का जितना प्रचार और उत्साह होगा देश में तथा जाति में उतनी ही जागृति होगी । यों तो आवाल वृद्ध वनिता को आदर्श जीवनियों का स्वाध्याय करना चाहिये परन्तु उन नव-युवकों के लिये कि जो अभी नवीन कोमल पौधों की तरह हैं, कि उन्हें जिधर चाहो मोड़ सकते हो, ये आदर्श जीवनियां प्रकाश-स्तम्भ का काम देती हैं जिनके सहारे वे संसार-सागर की उछाल तरंगों के बीच में भी अपनी जीवन-नौका सरलता एवं शान्ति पूर्वक खे सकते हैं ।

बस प्रकाशक तथा लेखक के उद्देश्य और उद्योग उसी दिन सफल होंगे जब कि जाति और देश इन नर-रत्नों के मूल्य को समझे गा और नव-युवक-दल इन के जीवन को अपना लक्ष्य मान कर जीवनोद्यान में प्रवेश करेगा ।

लेखक की लेखनी के विषय में कुछ भी लिखना ऐसा ही व्यर्थ है जैसे गुलाब पर गुलाबी रंग चढ़ाना क्योंकि लेखनी स्वयं ही अपने चमत्कारिक अन्तर्भावों को एक बार पढ़ने से जागृत कर देती है—रहा पूजनीय पं० नन्द कुमार देव शर्मा जी के विषय में, ये तो साहित्य-सरोवर के पुराने विहार करने वालों में हैं और वृद्ध साहित्य-सेवी हैं इन्होंने ने ही अपनी लेखनी से स्वर्गीय पूज्य पितृ पं० ओङ्कारनाथ बाजपेयी जी के समय में इस आदर्श जीवन चरित माला को गूँथना आरम्भ किया था । पूज्य पितृ देव के दिवंगत होते ही यह माला काटों में उलझ गई थी पर उस ईश्वर की दया से कि जिस के चुटकी



बजाते ही राई का पर्वत खड़ा हो जाता है जिसकी लीला को निहार कर जवान में लगाम लगानी पड़ती है, उसी की असीम अनुग्रह से आदर्श जीवन चरित माला का हार फिर तय्यार होने लगा है

बस यह चारित माला के हार का उपहार उन्हीं सज्जनों के भेंट है कि जिनकी कृपा के हम अब तक ऋणी हैं —

---



## निवेदन

लो ! प्यारे पाठको ! आज आप की सेवामें महाराणा प्रताप सिंह का जीवन चरित समर्पित है । यह ओंकार आदर्श-चरित माला की छठवीं संख्या, और उस माला में मेरी यह पांचवीं भेट है । जिस तरह से आप लोगों ने “आदर्श-चरितमाला” में मेरी पूर्व पुस्तकें—स्वामी विवेकानन्द; स्वामी दयानन्द, महात्मा गोखले और स्वामी रामतीर्थ को अपनाया है, वैसे ही मुझे आशा है कि यह मेरी लघु पुस्तक भी आपके पसन्द आवेगी ।

सन् १९१३ में, जब मैं दिल्ली से “सद्धर्मप्रचारक” की सेवा परित्याग करके, अपनी जन्मभूमि मथुरा में आया था तब मेरे अनुरोध से, मथुरा की आर्यमित्र सभा ने अपने यहां संसार के कतिपय महापुरुषों के जीवन पर कुछ व्याख्यान रखे थे उनमें से महाराणा प्रतापसिंह और छत्रपति शिवाजी के जीवन चरित पर मेरे व्याख्यान हुये थे, तब से कई मित्रों का उक्त दोनों व्याख्यानों को छपा देने का अनुरोध हो रहा था इधर ओंकार प्रेस के स्वामी और मेरे प्रिय मित्र पण्डित ओंकार नाथ वाजपेयी का आग्रह—महाराणा प्रताप का जीवन-चरित लिखाने का हो रहा था, अतएव मैंने यह छोटा सा जीवन चरित लिख दिया है, हिन्दी में कई जीवन चरित महाराणा प्रताप के नाटक उपन्यासों के रूप में हैं, दो एक ऐतिहासिक रीति पर भी लिखे गये हैं । इस जीवन चरित तथा अन्य जीवन चरितों में क्या अन्तर है, इसकी छान बीन करनेवाले पाठकों को दूसरे चरितों से इस चरित को मिला कर पढ़ना चाहिये तब उन्हें इस जीवन चरित तथा अन्य जीवन चरितों का कुछ भेद मालूम होगा ।



यह जीवन चरित टाड साहब कृत राजस्थान के इतिहास के आधार पर लिखा गया है पर जिन ऐतिहासिक परिदृश्यों का टाड साहब से मतभेद है, उनकी सम्मति भी मैंने फुटनोट ( पाद-टिप्पणियों ) में दे दी है । यदि कुछ भूल चूक हुई हो, अथवा कोई गयी बात सूझे तो पाठक सूचित करने की कृपा करें । यथा सम्भव, उस पर ध्यान दिया जायगा ।

निवेदक

नन्दकुमारदेव शर्मा



## प्रस्तावना

ॐपुराणमितिहासाश्च तथाख्यानानि यानि च  
महात्मानाँ च चरितं श्रोतव्यं नित्यमेव च,  
( महाभारत )

† “ There is not petty state in Rajasathan that has not had it's Thermopyloe and scarcely a city that no produced its Leonidas. —” *Tod's Rajasathan*

एक सहृदय बङ्गाली लेखक ने क्या ही अच्छा कहा है कि राजपूताना भारतवर्ष का हृदय है। जैसे मनुष्य का प्रधान बल हृदय में रहता है और हृदय के बल से जैसे प्राकृत महत्व सूचित होता है वैसे ही भारतवर्ष की प्रधान शक्ति राजपूताने में है। एक समय राजपूताने की महाशक्ति से ही भारतवर्ष का गौरव सुप्रतिष्ठित हुआ था। इस समय भारतवर्ष की महाशक्ति राजपूताने में हो या न हो, परन्तु आज भी इस गई बीती दशा में इस अधःपतन के समय में मेवाड़ समस्त राजपूताने का, नहीं नहीं समस्त भारतवर्ष का शिरोमणि है। आज भी चित्तौड़ का किला राजपूताने की तथा भारतवर्ष के हिन्दुओं की वर्तमान दशा पर धाड़ मार कर रो रहा है कौन ऐसा हिन्दू सन्तान और सहृदय व्यक्ति है जिसका कलेजा

---

ॐपुराण, इतिहास आख्यायिकायें तथा महात्माओं के चरित्रों को नित्य सुनना चाहिये।

† राजस्थान में ऐसी कोई छोटी सी भी रियासत नहीं है, जिसमें कभी थमा. पुखी की भाँति युद्ध न हुआ हो और कोई ऐसी छोटी नगरी नहीं है, जिस में सियोनिडाज की भाँति बीर पुरुष ने जन्म न लिया हो। वेदवक्त्र



चित्तौड़ का दुर्ग देख कर न फटता हो। चाहे जैसे पत्थर के हृदय का मनुष्य क्यों न हो पर चित्तौड़ के किले को देखकर उसकी रुलाई आये बिना नहीं रहती है। यदि कोई मुझसे पूछे कि हिन्दुओं का सच्चा तीर्थ कौन सा है तो मैं बिना किसी संकोच और बिना प्रतिवाद के भय के यही उत्तर दूंगा कि हिन्दुओं का सच्चा तीर्थ चित्तौड़गढ़ और पञ्जाब की पवित्र भूमि चिलियानवाला है। इन दोनों स्थानों से बढ़कर भारत-वर्ष में तो क्या संसार में भी और कोई स्थान है या नहीं इस में संदेह है। इतिहास लेखकों ने ग्रीस के लियोनिडाज़ और मिलताइडिस की प्रशंसा के बड़े २ पुल बांधे हैं पर सच पूछिये तो इस भारतमाता की गोद में अनेक लियोनिडाज़ और मिलताइडिस खेले हैं।

अरे प्राचीन सभ्यताभिमानी और तीर्थयात्रा के अनुरागी हिन्दुओ ! एकबार आंखें खोलकर देखो तो सही कि तुम्हारी प्राचीन सभ्यता की गवाही चित्तौड़गढ़ दे रहा है। उसकी एक २ दीवाल पर तुम्हारी प्राचीन सभ्यता के निशान बने हुए हैं। चित्तौड़गढ़ का एक २ कोना एक एक ईंट तुम्हारी प्राचीन सभ्यता का पता दे रही है। तीर्थयात्रा के प्रेमियों ! एक बार चित्तौड़गढ़ की यात्रा करो तो सही उसकी दीवारों पर तुम्हें साक्षात् धर्म के दर्शन होंगे, जिस शान्ति की खोज करते २ तुम भावले हो रहे हो वह सच्ची शान्ति चित्तौड़गढ़ के भीतर पैर रखते ही प्राप्त होती है। क्या देखते नहीं हो कि कौन सा ऐसा देश है जहाँ की अबलाओं ने भी प्रबल मनुष्यों के दांत खट्टे किये हैं जहाँ की स्त्रियों ने अग्नि में कूदकर अपने अपने धर्म की रक्षा करके आत्मिक बल का परिचय दिया है, जहाँ के सुकुमार कोमल बालकों ने भी अपने देश की रक्षा के निमित्त अपने प्राणों की आहुति दे दी है। यदि इस संसार में



ऐसा कोई पवित्र स्थान समझा जा सकता है तो वह पवित्र स्थान भारतवर्ष का मुकुटमणि मेवाड़ है जहाँ के निवासियों ने स्वतन्त्रता देवी की प्रसन्नता के लिये अपने खून की नदी बहाई थी। जहाँ की राजपूत सन्तान के जीवन का मूलमन्त्र भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र का यह वाक्य “हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्” रहा था। क्या उसी पवित्र भूमि मेवाड़ और उसके नायक महाराणा प्रतापसिंह की कथा सुनना हिन्दू मात्र का पवित्र कर्तव्य नहीं है? आओ पाठक! आओ! आज उसी पवित्र भूमि और उसके नायक प्रातः-स्मरणीय महाराणा प्रतापसिंह की आलोचना करके अपने हृदय को पवित्र करें।

मेवाड़ का इतिहास आदि से लेकर अन्त तक आत्मोत्सर्ग का इतिहास है। मेवाड़ के इतिहास में आत्मोत्सर्ग के जैसे ज्वलन्त और आदर्श दृष्टान्त मिलते हैं वैसे दुनियाँ के दूसरे देशों के इतिहास में मिलने असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। मेवाड़ के आत्मोत्सर्ग का इतिहास ऐसा वैसा नहीं है वह मुर्दा दिलों को झिन्दा रखने वाला इतिहास है। सूखी हड्डियों में खून उबालने वाला है निराशा रूपी सागर में गोते खाने-वालों को चिरौड़ का इतिहास आशा रूपी बल्ली है। डूबती हुई जातियों को चित्तौड़ का इतिहास तीनके का सहारा है। अधिक क्या कहें मृत्यु रूपी शय्या पर पड़े हुये राष्ट्रों को सजीवनी बूटी है पर दुख है कि हमारी हिन्दी भाषा में मेवाड़ के कितने ही इतिहास बन जाने पर भी राष्ट्रीय दृष्टि से मेवाड़ के इतिहास की किसी ने आलोचना नहीं की है। जिस देश के निवासियों का यह कथन था कि महात्माओं के चरित तथा इतिहासों का नित्य पाठ होना चाहिये उस देश में वर्तमान समय में इतिहास की आलोचना न होना अत्यन्त दुःखदायी



---

है। भारतामाता के प्रत्येक आत्मगौरव प्रिय स्वाभिमानी पुत्र को विशेषतः हिन्दुओं को मेवाड़ का इतिहास और उस के ध्रुव तारा महाराणा प्रतापसिंह का चरित नित्य-प्रति पढ़ना और सुनना चाहिये।



# मेवाड़ का संक्षिप्त परिचय

मेवाड़ का संक्षिप्त परिचय और पूर्व वृत्तान्त

जय जय जय चित्तौर दुर्ग,

जय गढ़ सिर रत्न जगत विख्यात ।

जिसने धर्म प्रेम के कारण,

सहे शत्रुओं के आघात ।

जिसके पत्थर कङ्कड़ तक पर,

लिखा हिन्दुओं का इतिहास ।

जिसको देख हमें हो सकता,

अपनी दृढ़ता का आभास ॥

श्रीचर

पाठक महाशय ! हम बड़े असमञ्जस में पड़े हुये हैं कि आप को मेवाड़ और उसकी राजधानी चित्तौड़ का क्या परिचय दें भला कभी कोई उझूली के इशारे से भुवनभास्कर का परिचय दे सकता है ? हमारी भी इस समय ऐसी ही दशा हो रही है कवि लोग अपनी कल्पना शक्ति के सहारे छोटी २ घटनाओं की बड़ी २ महिमा वर्णन करते हैं । छोटी घटनाओं को बड़ा बड़ा कर वर्णन करने में पाठकों को आश्चर्य में डाल देते हैं पर हम न तो कवि हैं न हम में कल्पना शक्ति है न हमारे मेवाड़ की ऐतिहासिक घटनाएं ऐसी छोटी हैं जिनका बड़ा बड़ा कर वर्णन किया जाय । न मेवाड़ की घटनायें किसी



ऐसे पर्दे के भीतर छुपी हुई हैं जिनको ढूँढ़ने खोजने की ज़रूरत हो। मेवाड़ का गौरव किसी पेचीले और चक्करदार तिलस्मी गढ़े में नहीं ढका हुआ है। मेवाड़ का अतुलनीय गौरव विश्वविदित है। हमारी टूटी फूटी कलम में ताक़त नहीं है कि हम उस विश्वविदित गौरव का परिचय पाठकों को दे सकें। इसलिये हम भारतवर्ष के मुकुटमणि मेवाड़ और उसके वीर नायक महाराणा प्रतापसिंह को नमस्कार करते हैं। भारतवर्ष के अतुलनीय देव और हृदयेश्वर प्रताप ! हमारी लेखनी में आपके गुणगान करने की तनिक भी शक्ति नहीं है। प्रताप ! आपके अनन्त प्रताप की महिमा अंकित करने के लिये सैकड़ों क्या हजारों लाखों कवि लेखक और चित्रकारों की भी ताक़त नहीं है तब मुझसे दीन हीन लेखक की क्या सामर्थ्य है।

जिस समय भारतवर्ष में अशान्ति की ज्वालाएँ उठ रही थीं, जिस समय धर्म-भूमि कर्म-भूमि भारतवर्ष में धर्म को ठुकराया जा रहा था, आत्मगौरव और स्वजातीय का अपमान किया जा रहा था उस समय राजपूतों ने विशेषतः मेवाड़ के क्षत्रिय वीरों ने स्वधर्म, स्वदेश, स्वजातीय रूपी त्रिमूर्ति की उपासना की थी। मेवाड़ की स्वाधीनता के लिये अपने धर्म की रक्षा के लिये, अपनी जाति के गौरव को अक्षुण्ण रखने के लिये मेवाड़ के क्षत्रिय वीरों ने सब कुछ बिसर्जन कर दिया था। उसी मेवाड़ के क्षत्रिय वीर सूर्यवंशी हैं रघुकुल क्षीरमणि भगवान रामचन्द्र जी के पुत्र लव के वंशधर हैं। कविकुल गुरु वाल्मीकि जी अपने अद्भुत ऐतिहासिक महाकाव्य रामायण में लिखते हैं कि रामचन्द्र जी ने अपने अन्तिम काल में लव को उत्तर कौशल और कुश को दक्षिण कौशल दिया था। उत्तर कौशल की राजधानी श्रीवस्ती थी पुरातत्त्व के



वर्तमान पण्डितों का कहना है कि श्रीवस्ती नगरी गोंडा जिले में है। लव के वंश में श्रीवस्ती का शासन कितनी पीढ़ियों तक रहा था इसका कुछ पता नहीं लगता। कर्नल टाड के मत के अनुसार मेवाड़ के वर्तमान राजवंश के पूर्वज कनकसेन ने ही पहले पहल जन्मभूमि को त्याग किया था उनके वंशधरों में किसी किसी ने सौराष्ट्र और बल्लभीपुर में राज्य स्थापित किया था। जिस समय शिलादित्य नामक राजा बल्लभीपुर में राज्य करते थे उसी समय हुनगणों ने बल्लभीपुर नगरी पर आक्रमण किया और उसको ध्वंस कर डाला हुनगणों के युद्ध में राजा बल्लभीपुर मारे गये उनकी रानी\* पुष्पवती गभवती थीं उसने इस भयानक संकट के समय एक गुहा में शरण ली थी वहीं उसके एक पुत्र हुआ। गुहा में जन्म लेने के कारण उसका नाम गोह पड़ा। मेवाड़ के राजपूत गण गोह के वंश में होने के कारण † गोहिलट या गिहिलाट कहलाये। बहुत दिन पीछे उक्त गोहवंशीय नागादित्य के एक

---

\* किसी इतिहास लेखक ने इस रानी का नाम कमलावती और उसके पुत्र का नाम केशवादित्य लिखा है। (लेखक)

† किसी किसी इतिहास लेखक का मत है कि बापा के पुत्र गुहिला से गुहिलौत कहलाये। राहपजी के समय तक तो बाप्पा रावल की सन्तान गुहिलौत कहलाई परन्तु राहपजी के पीछे उनकी सन्तान सीसोदिया कहलाई जाने लगी। सीसोदिया नाम पड़ने का कारण राहपजी का सीसोदा गांव में रहना कहा जाता है किन्तु किसी किसीका यह भी कथन है कि राहपजी ने भूख से मदिरा पी ली थी जिसके प्रायश्चित्त में राहपजी पिघला हुआ शीशा पीकर परलोक सिधारे और इसलिये उनकी सन्तान सीसोदिया प्रसिद्ध हुई।



पुत्र हुआ उसका नाम\*वाप्पारावल पड़ा। वाप्पा बड़े प्रतापी थे उन्होंने केवल अपना खोयाहुआ राज्य ही प्राप्त नहीं किया बल्कि अतुलनीय पराक्रम से बड़े बड़े वीरों के दांत खट्टे कर दिये थे। विजय में ही लोकप्रियता निवास करती है जो लोग अपने बाहुबल से यशःसौरभ के शिखर पर चढ़ना चाहते हैं विजया देवी उनको जयमाल पहनाये बिना नहीं रहती है। अतएव शनैः शनैः विजयादेवी बीर वर वाप्पा से भी प्रसन्न हुई अपने अनन्त पराक्रम के बल से वाप्पा ने चित्तौड़ पर अधिकार प्राप्त कर लिया। वाप्पा केवल चित्तौड़ पर ही अपनी ध्वजा पताका फहरा कर शान्त नहीं हुए थे किन्तु उन्होंने इरुपहान कन्दहार काश्मीर इराक ईरान तूरान† आदि पश्चिम देशों के बादशाहों को भी परास्त किया था।

वाप्पा की अवस्था चित्तौड़ के राजसिंहासन पर विराजते समय केवल १४ या १५ वर्ष की थी। सन् ७२८ ई० में उन्होंने चित्तौड़ का राजकार्य ग्रहण किया था और ईरान तक अपने राज्य का विस्तार कर लिया था। उन्हीं वाप्पारावल के वंशधरों के हाथ में आज तक मेवाड़ चला आता है।

❀केशवादित्य बड़े प्रतापी थे, ईडर के भील राजा ने उनको अपना उत्तराधिकारी बनाया, ईडर तथा उसके आसपास के स्थानों में केशवादित्य के वंशधर नागादित्य तक राज करते रहे। नागादित्य की मृत्यु के समय वाप्पा की अवस्था केवल तीन वर्ष की थी, जिस लक्ष्मणावती ने केशवादित्य की रक्षा की थी, उसके वंशधरों ने वाप्पाकी रक्षा की थी। वाप्पा परम प्रतापी था, उसका नाम कालभोज था, परन्तु प्रजा-प्रियताके कारण उसका नाम वाप्पा पड़ा। यदि हमारे पाठकों की इच्छा हुई तो इस जीवनी का लेखक बहुत शीघ्र वाप्पारावल की जीवनी पाठकों की सेवा में उपस्थित करेगा। लेखक

† देखो:—Anuuals and Antiquities : of Rajasthan.—  
By Col. Tod.



चित्तौड़ के राजपूतगण आज भी वाण्पारावल को अपना आदि पुरुष कहकर देवतुल्य पूजा करते हैं ।

वाण्पारावल के बहुत से पुत्र हुये थे जिन्होंने अपने भुजा बल से दूर दूर तक अपना अनन्त वैभव बढ़ाया था । इस समय उनके वंशधरों के अधिकार में उदयपुर डूङ्गरपुर प्रतापगढ़ और और बांसवाड़ ये चार रियासतें हैं । नैपाल का स्वतंत्रराज भी सीसोदिया वंश के राजपूतों का बतलाया जाता है और डूङ्गेब के दांत खट्टे करनेवाले प्रातः स्मरणीय शिवाजी महाराज भी सीसोदिया वंश के ही कहे जाते हैं । अस्तु हम मेवाड़ का इस समय स्वतन्त्र इतिहास लिखने नहीं बैठे हैं इस लिये कालक्रम की घटनाओं को छोड़कर केवल यही कहना है कि वाण्पारावल की नवीं पीढ़ी में रावल खुमान बहुत प्रसिद्ध हुये थे उन्होंने एक भोषण युद्ध में \* खुरासान के एक आक्रमणकारी के दांत खट्टे किये थे उस समय भारतवर्ष का विशेष अधःपतन नहीं हुआ था आज कल की भांति उस समय भारतवर्ष के हिन्दू अपने आत्मसम्मान की तिलांजलि नहीं दे चुके थे, उस समय तक हिन्दू नरेश स्वाधीनता और एकता-देवी की उपासना से मुंह नहीं मोड़ चुके थे । एक हिन्दू नरेश की विपत्ति में सब हिन्दू नरेश सम्मिलित होते थे अतएव रावल खुमासिंह की सहायता के लिये बड़ी बड़ी दूर से हिन्दू खुराशान के आक्रमणकारी से लड़ने के लिये इकट्ठे हुये अपने सहायक हिन्दू नरेशों की सम्मिलित चेष्टा से खुमानसिंह जी ने विजय लाभ की थी । खुमानसिंह जी बड़े प्रतापी थे रावल

\* कई प्राचीन पुस्तकों में महमूद खुरासानी लिखा है, परंतु कर्नल टाड का अनुमान है कि यह खलीफा मामू था । जिसको अपने बाप खलीफा हारू से खुरासान, जलूखिस्तान, काबुल, सिन्ध और हिन्दुस्तान के वे इलाके जो उसके आधीन थे, मिले थे । (लेखक)



खुमानसिंह जी से रावल समरसिंह जी तक कितने ही राजा गद्दी पर बैठे परन्तु समरसिंह जी बड़े शूरवीर हुए थे जिस समय पारस्परिक फूट से क्षत्रियकुलकलंक भारतमाता को पराधीनता की बेड़ी में जकड़ने वाले कन्नौज के जयचन्द्र से इशारा पाकर शहाबुद्दीन ग़ोरी ने अन्तिम हिन्दू नरेश पृथ्वीराज की राजधानी दिल्लीपर आक्रमण किया था उस समय \* समरसिंह जी अनुपम वीरता का परिचय देकर समर में वीर गति को प्राप्त हुये थे ।

समरसिंह जी के † समान ही मेवाड़ के अनेक अगणितवीरों ने समय समय पर अद्भुत परिचय देकर संसार को चकित और स्तंभित कर दिया था । समरसिंह जी के पश्चात् कितने ही राणा गद्दी पर बैठे थे परन्तु संवत् १३३१ (सन् १२७५ ई०) में राणा लखमसी या लक्ष्मणसिंह जी गद्दी पर बैठे थे । राणा जी के समर्थ न होने तक उनके काका भीमसिंह राजकार्य करते रहे । भीमसिंह की महारानी पद्मावती को हरण करने के लिये दिल्लीश्वर अलाउद्दीन खिलजी ने मेवाड़ पर चढ़ाई की थी । राजपूत वीरों ने उस समय अलाउद्दीन खिलजी के खूब दांत खट्टे किये थे, परन्तु अगणित मुसलमान

❀ समरसिंह जी ने युद्ध में बड़ी वीरता प्रकट की थी । उनके पुत्र कल्याण मुसलमानों से युद्ध करते हुए मारे गये तब भी उनको कुछ शोक न हुआ ।

† जिस समय युद्ध कर रहे थे उससमय उन्हें पृथ्वीराज के मरनेका समाचार मिला । पर समाचार सुनकर भी अपने कर्त्तव्य से विचलित नहीं हुए । कोई कोई इतिहास लेखक कहते हैं कि पृथ्वीराज मारे नहीं गये थे । उनको शहाबुद्दीन ग़ोरी ने जीता हुआ पकड़ा था । स्वर्गीय कविराज श्यामसुन्दर जी का मत है कि समरसिंह जी पृथ्वीराजके समकालीन नहीं थे परन्तु मथुरा के स्वर्गीय पं० मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या ने इसका खंडन एक शिखा लेख



सैनिकों के सामने राजपूत वीर कब तक ठहर सकते थे, अतः पृथ्वीराज का भाग्य फूट गया, महाराणी पद्मावती तथा अन्य राजपूत महिलाओं ने अग्नि में कूदकर अपने कोमल प्राणों को अग्निदेव की आहुति में देकर धर्म की रक्षा की थी। राजपूत वीरगण छै मास तक लगातार लड़ते रहे थे।

मेवाड़ की स्वाधीनता नष्ट हो जाने पर भी, मेवाड़ मुसलमानों के हाथों में बहुत दिन नहीं रहा। अपनी मातृभूमि की दुर्दशा देखकर मेवाड़ के क्षत्रियवीरों की हड्डियों में स्वाधीनता के लिये खून उबल उठा। उन्होंने थोड़े दिन पीछे ही अपनी मातृभूमि मेवाड़ में स्वाधीनता की ध्वजा पताका फहरा दी। महाराणा हम्मीरसिंह जी के समय में जो लक्ष्मणसिंह जी से पीछे कई पीढ़ियों में हुए हैं, मेवाड़ पूरी ओज पर था। उसके पीछे कितने ही महाराणा चित्तौड़ की गद्दी पर बैठे उन्होंने अनेक सङ्कटों का सामना करते हुए, मेवाड़ की, स्वाधीनता की तथा चित्तौड़गढ़ के गौरव की पूर्ण रक्षा

के आधार पर किया है। कविराज श्यामलदास जी का यह भी मत है कि चन्द्रकविकृत जो “पृथ्वीराज—रासौ” विख्यात है, यह असली रासौ नहीं है। स्वर्गीय पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या स्वर्गीय कविराज श्यामलदास जी के इस मत के प्रतिकूल थे।—मेवाड़ के स्वर्गीय महाराणा सर फतेहसिंह जी के समय कविराज श्यामलदास जी ने मेवाड़ का बृहत् इतिहास “वीर विनोद” लिखा था, जिसका कुछ अंश यहाँ के सज्जन कीर्ति सुधारक बन्धालय में छपा भी था, परंतु न मालूम इस इतिहास का छापना क्यों बन्द कर दिया गया, छपा हुआ अंश भी प्रकाशित नहीं होने पाया हमारे मेवाड़ के वर्तमान अभीश्वर महाराणा साहेब से प्रार्थना है कि वे इस इतिहास को प्रकाशित करके इतिहास प्रेमियों के कौतूहल का निवारण करने की कृपा करें। लेखक



की थी। अनेक विपदों से घिरने पर भी वे अपने कर्तव्य से च्युत नहीं हुए थे। महावीर हम्मीर के सौ वर्ष पीछे राणा कुम्भाजी ने मेवाड़ की विशेष उन्नति की। पराजित शत्रु को पददलित करना ही वीरों की शोभा नहीं देता है, मरे को मारने से क्या बहादुरी है। हारे हुए शत्रु के साथ दयापूर्ण व्यवहार करना भी सच्चे वीर का कर्तव्य है। राणा कुम्भाजी का चरित्र भी ऐसे देव भाव से भरा हुआ है। उन्होंने कितनी ही बार अपने बैरियों के छक्के छुड़ा दिये थे, गुजरात और मालवा देश के मुसलमानों को रणक्षेत्र में से भगा दिया था। परन्तु फिर भी उन्होंने अपनी शरण में आये हुये बैरियों के साथ अच्छा व्यवहार किया। राणा कुम्भाजी के सामान देवभाव से भरा हुआ चरित्र बहुत ही कम मिलता है।

यह बात नहीं है कि चित्तौड़ में अन्यान्य देशों और भारत-वर्ष के अन्य प्रान्तों के समान कुल कलङ्क और कुलाङ्गार उत्पन्न न हुए हों। चित्तौड़ में भी समय समय पर कुलाङ्गार और कपूत सन्तानें हुई हैं, उनके खोटे कार्यों को देखकर कहना पड़ता है कि परत्मात्मा की भी ऐसी इच्छा थी कि चित्तौड़ के गौरव की रक्षा हो। क्योंकि मेवाड़ के इतिहास के मनन करने से पता लगता है कि जब कभी चित्तौड़ में एकाध कुल कलङ्क और देशद्रोही उत्पन्न हो भी गया है तब चित्तौड़ से अधिकांश राजपूत वीरों के हृदय में अपने के गौरव की रक्षा का ही भाव रहा है। ऐसा कभी नहीं हुआ कि एक दो कुल कलङ्क के पीछे, चित्तौड़ के सबके ही सब लोग अपने देश से शत्रुता कर बैठे हों अथवा सोने के लालच में अपनी मालमूमि की परधीलता की बेड़ी में जकड़वा दिया हो। महाराणा कुम्भा जी के ही कुलाङ्गार, कुलकलङ्क पुत्र उदयसिंह जी हुये थे। कुलकलङ्क उदयसिंह जी ने अपने पिता,



महाराणा कुम्भा जी को विष दे दिया था । जिससे कुम्भा जी का देहान्त हुआ ।

पितृघातक उदयसिंह ने कुछ काल तक मेवाड़ की राजगद्दी को तथा वाण्पारावल के पवित्र सिंहासन को कुछ दिन तक कलंकित अवश्य किया था, उदयसिंह के समय में मेवाड़ को राणा कुम्भा जी के परिश्रम, वीरता और बुद्धिबल से जो गौरव प्राप्त हुआ था, उसका बहुत ही हास हुआ । पर चित्तौड़ के राजपूत मुसलमानों के समान न थे, जिन्होंने अपने पिता को कैद करनेवाले और भाइयों की हत्या करनेवाले औरङ्गजेब का साथ दिया था । राजपूतगण अपनी मातृभूमि की दशा देखकर विह्वल हो गये, महाराणा कुम्भा जी के जेठे कुमार रायमल जी ने उदयसिंह से चित्तौड़ को अपने हस्तगत कर लिया । उदयसिंह मुसलमान बादशाह से सहायता के लिये प्रार्थना करने को दिहली गये और बादशाह को सहायता के उपलक्ष्य में अपनी बेटी व्याहने का प्रण भी किया । परन्तु राजाओं के राजा, महाराजाओं के महाराज, सम्राटों के सम्राट जगदीश्वर को मंजूर न था कि सिसोदिया वंश को कलंक लगे । वाण्पारावल का पवित्र वंश अपवित्र हो, चित्तौड़ की मान मर्यादा नष्ट हो जावे । बस उदयसिंह ज्योंही बादशाह से अपनी बेटी देने की प्रतिज्ञा कर के चला, त्योंही उस पर विजली गिरी । मानों परमात्मा ने मेवाड़ के राणाओं की इस प्रतिज्ञा की रक्षा की कि “हम कभी अपनी बेटी मुसलमान बादशाहों को नहीं देंगे” मेवाड़ के इतिहास में ऐसी ऐसी घटनाओं को देख कर ही कहना पड़ता है कि यह कहावत ठीक ही है कि जो धर्म की रक्षा करता है उस की ओर भगवान भी होते हैं ।

राणा रायमल के समय में भी मेवाड़ अपनी पूर ओज



पर था। पर भारतवर्ष के आदर्श, उच्च आदर्श बहुत कुछ बदल चुके थे। महाभारत के महासंग्राम के पीछे, भाई भाई में जो चाण्डालिनी फूट प्रचलित हो गई थी। उस चाण्डालिनी फूट ने ऋणा रायमल के तीन पुत्रों के हृदय में भी स्थान प्राप्त कर लिया था। जिसके कारण उस समय मेघाड की विशेष उन्नति नहीं हो सकी।

ऋणा रायमल जी के तीन पुत्र थे ज्येष्ठ पुत्र बाबर के साथ लड़नेवाले सांगा या संग्रामसिंह थे दूसरे पृथ्वीराज तीसरे जयमल। संग्रामसिंह वीर शान्त, और गम्भीर स्वभाव के थे। पृथ्वीराज बड़े पराक्रमी, साथ ही उत्पाती थे। ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण संग्रामसिंह राजसिंहासन के उत्तराधिकारी थे। पृथ्वीराज और संग्रामसिंह में पारस्परिक भगड़ा राज्य के लिये हुआ था, जिससे संग्रामसिंह भाग गये थे। इसपर क्रुद्ध होकर रायमल ने पृथ्वीराज को अपने राज्य से निकाल दिया था। पृथ्वीराज की वीरता के सम्बन्ध में इतिहास में बहुत सी आश्चर्यजनक घटनाएँ मिलती हैं। कहते हैं, एक बार चित्तौड़ के दरबार में मालवा देश के बादशाह का एक सेवक आया था राणा रायमल उससे बड़ी सादगी से बातचीत कर रहे थे। पृथ्वीराज को सेवक के प्रति अपने पिता रायमल का यह वर्तन बुरा लगा। वे सोचने लगे कि जिन रायमल जी के पिता राणा कुम्भा ने मालवा के बादशाह को छः महीने तक कैद में रखकर छोड़ दिया था, वन्हीं के पुत्र रायमल बादशाह के सेवक से इस तरह नम्रता से बातें कर रहे हैं। यह विचार कर अपने पिता से बादशाह के सेवक से बातचीत करने की सचाई की, जिसपर रायमल जी ने कहा:—

पृथ्वीराज ! भाई, तू बड़े बादशाहों को कैद करनेवाला होगा पर मुझे तो अपना राज्य बचाना है। बस इसी पर पृथ्वीराज दरबार से बठ दिष्ट। अपनी सेना इकट्ठी करके मालवा पर चढ़ाई करदी और बादशाह को कैद कर के अपने पिता के चरणों में रख दिया और कहा "पिता जी ! इस मालवीदास से पूछो कि यह कौन है ! इस भौंसि अपने पिता की सचमुके का बदला दिया और बादशाह को एक महीने तक कैद में रख



कितने ही इतिहास लेखकों ने ग्रीस देश की कतिपय महत्वपूर्ण घटनाओं को लेकर आकाश पाताल एक कर दिया है। परन्तु खोज और तलाश की जाय तो भारतवर्ष के इतिहास में एक से एक बढ़कर महत्वपूर्ण घटनाएँ हुई हैं। दिया रोम को ब्रूतस के कारण अभिमान है तो इस गये बोले समय में आज भी भारतमाता का राणा रायमल के कारण मस्तक ऊँचा है। यदि ब्रूतस ने अपने पुत्र को न्याय की रक्षा के लिये

कर फिर उसे आदर पूर्वक छोड़ दिया, जिस समय का हम यह वृत्तान्त लिख रहे हैं उस समय भारतवर्ष अपने प्राचीन आदर्शों से बहुत कुछ गिर चुका था। परन्तु उस बिगड़ी दशा में भी राजपूतों में आपस में जो लड़ाई भगड़े होते थे। उनके वृत्तान्त सुनने से ज्ञात होता था। कि वह भारतवर्ष के लिये सुवर्ण युग था। पृथ्वीराज और उनके चाचा सूरजमलजी के पारस्परिक युद्ध का हाल पढ़कर चकित और स्तम्भित होना पड़ता है। सूरजमल और पृथ्वीराज में चितोड़ की गद्दी के लिये झगड़ा हो गया था। दिन भर पृथ्वीराज और सूरजमल दोनों में खूब युद्ध हुआ, एक दूसरे की सेना की मुठभेड़ हुई। अन्त में दोनों की सेनाओं ने राशि होजाने के कारण युद्ध बन्द किया और विश्राम करने लगे। उस समय पृथ्वीराज और सूरजमल में जो वार्तालाप और मिलन हुआ था वैसा शायद अन्य किसी देश के इतिहास में देखने में नहीं आता है। लड़ाई हो चुकने के पीछे पृथ्वीराज अपने काका सूरजमल जीके पास गये। और पूछा:—काकाजी अब आपके घाव कैसे हैं? सूरजमल उस समय घाव सिलवा रहे थे। सूरजमल:—“बेटा! तुमको देखकर मुझे बड़ी खुशी हुई इस लिये घाव सूख गये हैं। इसके पीछे पृथ्वीराज ने भोजन मांगा। काका भतीजे दोनों ने साथ भोजन किया। चलते समय पृथ्वीराज ने अपने काका का दिया हुआ पान भी खा लिया और कुछ शंका भी नहीं की। दूसरे रोज सुबह अपने काका से युद्ध करने और उसी दिन युद्ध समाप्त करने की प्रतिज्ञा करके चले गये। दूसरे दिन फिर युद्ध हुआ और युद्ध हो चुकने के पीछे चाचा भतीजे



प्राणों का \* दण्ड दिया तो राणा रायमल ने, न्याय और धर्म की रक्षा के लिये अपने पुत्र के प्राणघातक को सोने के कड़े और बरनौर का राज्य पारितोषिक स्वरूप दिया + इङ्ग्लैण्ड के एक राजकुमार को एक जज के जेल दण्ड देने पर अङ्गरेजी इतिहास लेखकों ने इङ्ग्लैण्ड के उस समय के अधी-

फिर वैसे ही मिले कि मानो युद्ध हुआ ही नहीं था। अहा! वह भारत वर्ष का कैसा सुन्दर सुहावना समय था। कर्नल टाड ने इस घटना को अपने इतिहास में उल्लेख करके निम्न टिप्पणी लिखी है:—

“ It will show the manners and customs so peculiar to the Rajputs, to describe the meeting between the rival uncle and nephew—unique in the details of strife, perhaps, since the origin of man—Col. Todd.—  
लेखक

❀ जब रोम में प्रजातन्त्र राज्य की स्थापना हुई थी तब कलेतिनियस का भतीजा और ब्रूटस का पुत्र प्रजातन्त्र राज्य को नष्ट करने में अभियुक्त हुये थे। कलेतिनियस ने अपने भतीजे को उचित दंड से कुछ कम दंड देना चाहा पर ब्रूटस ने अपने पुत्र को प्राणदंड की आज्ञा दी। लेखक

+ लोला नामक एक पठान ने राव सुरतान का राज्य टांकाटोड़ छीन लिया था। सुरतान की पुत्री तारावती बड़ी रूपवती और वीरांगना थी। उसने अपने पिता का राज्य छुड़ाने की कठोर प्रतिज्ञा की। राणा रायमल का पुत्र जयमल तारावती के गुणों और रूप की प्रशंसा सुनकर उससे विवाह करने को तयार हुआ। राव सुरतान ने जयमल का यह प्रस्ताव स्वीकार किया पर कहा कि पहले हमारा राज्य सुसज्जमानों के हाथ से छुड़ा दो तब हम तारा तुमको देंगे। जयमल ने भी पठानों के हाथ से राव सुरतान के राज्य छुड़ाने की प्रतिज्ञा की परन्तु अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने के पहले ही तारा की लेना चाहा था, वस इसी पर क्रुद्ध होकर सुरतान ने जयमल को मार डाला था। उस समय राणा रायमल के जेठे बेटे सग्रामसिंह का कलकत्ता के राजा दूसरे बेटे अश्वरीज को राज से निकाल दिया था।



श्वर का मुक्तकंठ से प्रशंसा की ‡ । परन्तु हाय ! अपने प्यारे पुत्र के बध पर राणा रायमल ने अपना कलेजा पत्थर से भी भारी और कड़ा करके, पुत्र के घातक के प्रति जो असीम उदारता प्रकट की थी, उसकी बहुत से इतिहासों में नाममात्र को भी चर्चा नहीं है ।

राणा रायमल के पीछे संग्रामसिंह जी ने चित्तौड़ के राज सिंहासन को सुशोभित किया था । “यथा नामस्तथा गुणः”—जैसे संग्रामसिंह जी का नाम था, वैसे ही वे गुणों में अलौकिक थे । वास्तव में संग्रामसिंह संग्रामसिंह ही थे । उन्होंने समरक्षेत्र में समय समय पर अपनी अलौकिक वीरता का परिचय देकर राजस्थान भर को मुग्ध कर लिया

केवल एक जयमल ही उन का पुत्र मौजूद था । परन्तु अपने पुत्र के घातक से बदला नहीं लिया । जयमल के मरने पर उन्होंने धैर्य धरकर गम्भीर भाव से यही कहा;— ‘जिसने लड़की के बाप की इज्जत लेनी चाही, सो भी उसकी आपसि दशामें, उसे जो प्राणदण्ड दिया गया है वह उचित ही है’ ।—लेखक

‡ इङ्गलैंड के इतिहास की घटना यह है:—“इङ्गलैंड का एक बादशाह स्यात् जिसका नाम (Henry V) पांचवां हैनरी था, ठीक २ इस समय याद नहीं आता, युवराज रहते समय बड़ा उत्पाती था । एकबार युवराज रहते समय, जज गोसाहन ने उसके एक साथी को किसी अपराध में जेल का दंड दिया । इस पर गुस्से में आकर युवराज ने जज के मुंह पर एक थप्पड़ मारा । जज ने इसका विचार न करके कि वह युवराज है उसको भी जेल की सजा दी । जब बादशाह ने इस घटना को सुना तो जज और युवराज दोनों की प्रशंसा की । कहते हैं जब युवराज पाचवें हैनरी के नाम से बादशाह हुआ तब वह उस जज से जिसने उसको युवराज रहते समय सजा दी थी कुछ भी नाराज नहीं हुआ; किन्तु उसके साथ न्यायशील होने के कारण अच्छा वर्तन किया ।



था। उनके समय में समस्त राजपूत सामन्तगण एक ही विजय-वैजयन्ती के तले इकट्ठे हुये थे। भारतवर्ष के लिये वह विलक्षण समय था। 'हथिनी सी लक्ष्मी विचल इत उत भोंका खाय"—कवि के उपर्युक्त शब्दों के अनुसार—दिल्ली के राजसिंहासन के लिये मुसलमानों के कितने ही वंशों में पारस्परिक भगड़े हो चुके थे और हो रहे थे तुग़लक, सय्यद खिलजी, लोदी और अनेक मुसलमानी वंश, महाराज युधिष्ठिर तथा महाराज पृथ्वीराज, राजधानी इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) में अपनी लीला दिखा चुके थे। उस समय तक राजपूतों ने राष्ट्रविप्लव का साथ नहीं दिया था, उन्होंने दिल्ली के बादशाह की आधीनता स्वीकार नहीं की थी। उस समय तक राजपूतगण सोने चांदी के लोभ में अपनी प्राण प्यारी जन्म-भूमि की स्वतन्त्रता बेचने के लिये तैयार नहीं हुये थे। उस समय तक राजपूताने के क्षत्रिय वीरों ने देशद्रोहिता का टीका अपने माथे पर नहीं लगाया था। सोलहवीं शताब्दी के आरंभ में जिस समय संग्रामसिंह मेवाड़ के राजसिंहासन पर विराजे थे, उस समय इब्राहीम लोदी, दिल्ली का बादशाह था। उसी समय मुग़लराज्य की जड़ जमाने वाले बाबर ने भारत पर आक्रमण किया था।

बाबर अन्यान्य आक्रमणकारियों के समान केवल धन दौलत के लूटने की ही इच्छा नहीं रखता था। किन्तु उसकी महत्वाकांक्षा अपने राज्य की जड़ जमाने और उसके विस्तार करने की थी। लोदीवंश का सौभाग्य सितारा उस समय डूब चुका था। पानीपत के मैदान में इब्राहीम लोदी और बाबर में युद्ध छन गया। विजय लक्ष्मी इब्राहीम लोदी से रुठ गई और बाबर पर प्रसन्न होकर उसको जयमाला पहिनाई। बाबर ने लोदी वंश पर विजय प्राप्त करते ही अपने राज्य



के विस्तार करने की चेष्टा आरंभ की इधर राणा संग्रामसिंह जी भी बाबर की करतूतों से ग्राफिल न थे । उन्होंने देखा कि इस समय तनिक भी निश्चिन्त रहने से समस्त हिन्दू राज्य यवनों के पदाक्रान्त होगा, बाबर से लड़ने के लिये तैयारियां करने लगे । प्रथम युद्ध में बाबर \* राणा सांगा जी से पराजित हुआ पहले युद्ध में मुगल सेना के धुरें उड़ गये थे । राजपूत सेना की बीरता देखकर मुगल सेना बड़ी हताश हुई । पर बाबर उन माई के लालों में से न था जो असफलता प्राप्त होने पर निराशा के सागर में गोते खाने लगते हैं । अथवा हतबुद्धि होकर अपने उद्देश्य से मुंह फेर लेते हैं । पहिली बार युद्ध में सफलता प्राप्त न होने पर उसने फिर युद्ध का ठानी † राणा सांगाजी भी सच्चे क्षत्रिय वीर की भांति बाबर से मुकाबले को आगे बढ़े ।

प्यारे पाठको ! जानते हो कि इस देश का भाग्य क्यों फूटा है ? अनेक वीर लालों के होते हुये भी हमारी भारत माता

\* राणा संग्रामसिंह जी का दूसरा नाम राणा सांगा था—लेखक

† “साधु सराहैं साधुता, जती जोखिता जान, रहि मन सांचे सूर की बैरी करे” बखान,—ठीक ही है बाबर ने अपने जीवन चरित में राणा सांगा की बड़ी तारीफ लिखी है । राणा सांगा ने मालवा गुजरात तथा अन्य स्थानों के मुसलमानों से अठारह बार युद्ध किया था । सभी युद्धों में राणा सांगा को जय प्राप्त हुई थी । उनका समस्त जीवन वीर धर्म पालन करने ही में बीता था । वीरव्रत पालन करने ही में उनकी एक आंख, एक हाथ और एक पैर नष्ट होगये थे, परन्तु तब भी वे अपने व्रत से टले नहीं । उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि आदशाही सेना पर विजय प्राप्त किये बिना कभी अपनी राजधानी चित्तौड़ में नहीं आऊंगा । यह प्रतिज्ञा करके वे पहाड़ों में चले गये थे । परन्तु इस प्रतिज्ञा के थोड़े दिन पीछे ही उनका देहान्त हो गया, जिससे उनकी यह मनोकामना पूर्ण नहीं हो सकी—लेखक ।



के पैरों में पराधीनता की बेड़ा कैसे जकड़े दी गई थी ? इस देश के अनेक कुलकलंक और भारत माता के अपने कपूतों के कारण ही न ? जिस समय राणा सांगा बाबर के मुकाबले के लिये आगे बढ़े उस समय बाबर ने सन्धि का प्रस्ताव उपस्थित किया । राणा सांगा जी की ओर से रायसेन का राजा सलहदी तोंवर सन्धि की बात चीत करने लगा और वह विश्वासघाती देशद्रोही सलहदी तोंवर बाबर से मिल गया जिससे दूसरे युद्ध में राणा जी हार गये । अरे कुलकलकी ! नराधम !! सलहदी तोंवर !!! तुझ जैसा कपूत भारत माता की कोख में उत्पन्न न हुआ होता । तो इस देशका इतिहास ही पलटा खा जाता । परन्तु विधि के विधान को कौन रोक सकता है । इस युद्ध के थोड़े दिन पीछे ही महाराणा संग्रामसिंह उपनाम सांगा जी परलोक को सिधार गये जिससे हिन्दू जाति की विशेषतः राजपूतों की, मेवाड़ के क्षत्रिय वीरों की सब आशाएँ मिट्टी में मिल गईं । राजपूत जाति और मेवाड़ भूमि अनाथ हो गई ।

संग्रामसिंह की मृत्यु के पीछे मेवाड़ राज्य में बहुत कुछ उलट फेर हुए । जिनको यहाँ लिखने की आवश्यकता नहीं है केवल इतना ही कहना पर्याप्त है कि सांगा जी के पीछे उनके दो बेटे रत्नसिंह और विक्रमादित्य ने बारी बारी से कुछ वर्ष तक राज्य किया था । रत्नसिंह वीर थे अपने पिता के राज्य में से एक अंगुल जमीन भी बाबर अथवा मालवा के बादशाह के हाथ में नहीं जाने दी किन्तु वीर होने के साथ ही साथ रत्नसिंह कुछ उजड़ और क्रोधी भी थे । इसी से बूंदी के \*

\* बूंदी के राव सूरजमल जी से रत्नसिंह जी के भगड़े का कारण यह था— श्रीनगर के प्रधान राजा सरंगदेव के दो पुत्रियाँ थी एक रत्नसिंह जी की ब्याही थी । दूसरी बूंदी के राव सूरजमल की । इस लिये दोनों में



राव सूरजमल को एक घरू भगड़े के कारण मारकर आप भी उन्हीं के हाथ से मारे गये ।

विक्रमादित्य में वीरों के योग्य कोई गुण न थे । गुजरात के बादशाह ने दूसरी बार चित्तौड़ को विध्वंस किया था ।

पारस्परिक अत्यन्त प्रीति थी । परन्तु वही प्रीति दोनों के लिये विषमय फल उत्पन्न करनेवाली हुई । कहते हैं एक समय बूंदी के राव सूरजमल जी चित्तौड़ में सो रहे थे, वहाँ पुरविया सरदार ने हंसी में एक तिनका से राव का कान गुदगुदा दिया । राव जी अचेत सो रहे थे, चौंककर उठ बैठे और अपने खांडे से पुरविया को वहीं मार डाला । पुरविया का लड़का पूरणमल अपने पिता का बदला लेने का अवसर ढूढ़ने लगा और राणाजी के कान राव जी के विरुद्ध भरने लगा । एक समय सूरजमल जी अपनी ससुराल गये थे, वहाँ बड़ी साली—राणा जी की रानी भी मौजूद थी राणा जी की रानी के अनुरोध से तीर से एक पालतू सिंह को मारगिराया । इस पर रावजी की साली को बड़ा अर्चंभा हुआ । चित्तौड़ पहुंच कर रावजी की साली ने अपने पति राणा जी से कहा । राणाजी ने समस्त वृत्तान्त अपने पुरविया सरदार पूरणमल से कहा । अवसर पाकर पूरणमल ने यह पट्टी पढ़ा दी कि रावजी ने आपकी रानी जी से मित्रता गांठ ली है । इस बहम में आकर राणा जी रावजी के प्राण लेने को उतारू होगये । वे सूरजमल जी के मारने के विचार से बूंदी आये और उनसे शिकार खेलने के लिये कहा । दूसरे दिन राणा और राव दोनों शिकार खेलने गए वहाँ राणा और उसके साथियों ने राव पर घावा किया जिसमें राव मारे गये पर राव ने मरते मरते राणा और उसके पांच साथियों की जान ले ली । कहते हैं जब एक भौकर ने राव सूरजमल की माता से उनकी मृत्यु समाचार कहा तब राव की माता ने बड़े जोश से कहा कि मेरा बेटा अकेला ही मारा गया है ? कोई पुत्र जिसने मेरा दूध पिया है अकेला नहीं मारा जा सकता है । जैसे ही राव माता ने कहा वैसे ही स्तनों में से ऐसे जोर से दूध की धार निकली कि जिस पत्थर पर दूध की धार टपकी वह पत्थर ही टूट गया । इतने में ही राव की माता को समाचार मिला कि राव ने मरते मरते राणा सहित पांच आदमियों को मार दिया है—लेखक



उस समय राजपूतगण भोग विलासी और डरपोक राजा की आधीनता के अभ्यासी न थे । विक्रमादित्य अपने क्षत्रिय वीरों को किसी तरह से प्रसन्न नहीं कर सके । प्रसन्न करना तो दूर रहा उलटा अपने कर्मों से अपने राजपूत सरदारों को नाराज कर दिया । जिससे मेवाड़ के सरदारों में अनबन हो गयी थी । इसमें सन्देह नहीं कि घर की फूट जगत में बहुत बुरी होती है बैरियों को घर की फूट से लाभ उठाने का अवसर मिल जाता है बस इस फूट से चित्तौड़ को सदैव के लिये, अपने आधीन करने से मालवा और गुजरात के मुसलमान बादशाह क्यों चूकने लगे दोनों ने मिलकर मेवाड़ को बांट लेना चाहा था । परन्तु विक्रमादित्य से लाख अप्रसन्न रहने पर भी राजपूत वीरों ने चित्तौड़गढ़ की रक्षा के लिये अपने प्राणों की आहुति दी और चित्तौड़ में दूसरा शाका \* हुआ ।

\* शाका उसे कहते हैं कि जब राजपूत लोग निराश होकर कैसरिया बाना पहन कर शत्रु से लड़ने जाते हैं । उस दशा में राजपूत लखनाएँ अग्नि में कूद कर माणों की आहुति दे देती हैं । इस भाँति पहला शाका अलाउद्दीन खिलजी के समय में हुआ था । दूसरा शाका यह हुआ, इस शाके में बारह हजार लखनाओं ने अग्नि में कूद कर अपने धर्म की रक्षा की थी । राजमाता जवाहरबाई ने इस युद्ध में बड़ी वीरता दिखाई थी, वह कवच पहन कर युद्ध स्थल में पहुँच गई हाथ में तलवार लेकर मुसलमानों से स्वयं युद्ध करने लगी और राजपूत वीरों को उत्साहित करने लगी । मुसलमानों की तोप का गोला राजमाता जवाहिर बाई के शरीर में लगा जिससे युद्ध में उसका देहान्त हो गया । इस युद्ध में ३२ हजार राजपूत मारे गये । यह शाका सन् १५३० ही में हुआ था । जब वदयसिंह की माता कर्णवती ने देखा कि युद्ध में जवाहिर बाई मारी गई तब यह विचार कर कि कहीं यवन लोग राजपूत लखनाओं को स्पर्श न करें अग्नि में कूद कर धर्म की रक्षा करने के लिये राजपूत स्त्रियों को उत्साहित किया था । बूंदी के राजाओं ने इस युद्ध में अच्छी वीरता दिखाई थी । लेखक : १५३०



कुछ दिनों के लिये चित्तौड़गढ़ उस समय मुसलमानों के हाथ में चला गया था। परन्तु राजपूत वीरों ने किसी न किसी तरह से उसका फिर उद्धार किया। राणा विक्रमादित्य को राजगढ़ी से हटाकर बनवीर को गढ़ी पर बिठलाया और यह सलाह ठहरी कि जब तक उदयसिंह बड़े न हों तब तक बनवीर राज्य करें। बनवीर पृथ्वीराज का दासी पुत्र था। उसकी इच्छा हुई कि उसके रहते हुए चित्तौड़ की राजगढ़ी पर कोई न बैठे। अतएव पहले उसने विक्रमादित्य की हत्या की पीछे उसने बालक उदयसिंह को भी मार डालना चाहा। बनवीर के ऐसे खोटे विचार को देख कर उदयसिंह की घाय ने, जिसका नाम पन्नादासी था, अपने स्वामी पुत्र, राजपुत्र, चित्तौड़ के उत्तराधिकारी, भावी राजा की रक्षा करने की ठानी। पन्ना ने उदयसिंह जी की रक्षा के लिये जो कुछ किया था, उसने उसका नाम चित्तौड़ के इतिहास में भारत-वर्ष के इतिहास में, नहीं नहीं संसार के इतिहास में सदैव के लिये सुनहले अक्षरों में अङ्कित कर दिया। कहों ! जानते हो !! अपने स्वामी और राजपुत्र की रक्षा के लिये, उस अबला ने अपने किस आत्मिक बल का परिचय दिया था ? उस अबला ने जिस भांति सबल हृदय होकर आत्मोत्सर्ग का ज्वलन्त उदाहरण उपस्थित किया था, वैसा उदाहरण संसार की उन्नतिशील जाति के इतिहास में बहुत कम देखने में आवेगा। पन्ना ने राजपुत्र उदयसिंह को एक टोकरी में सुलाकर फूल पत्तों से ढककर एक नार्ई से कहा कि इसे अमुक स्थान में ले जाओ और उदयसिंह के स्थान में प्राणों से प्यारे अपने पुत्र को सुला दिया। जब बनवीर आया तब अगुली का इशारा अपने बेटे की ओर कर दिया। बनवीर ने पन्ना दासी के पुत्र को, उदयसिंह समझकर बध कर डाला। पन्ना की आँखों के



सामने सदैव को उसका दीपक बुझ गया। अपने पुत्र के मारे जाने पर, उदयसिंह मारे गये कहकर पन्ना उच्च स्वर से रोने लगी। पन्ना को रोते देखकर और उदयसिंह जी के मारे जाने का समाचार सुनकर रनवास में हाहाकार मच गया। इस भाँति उदयसिंह की रक्षा हुई बेचारी पन्ना ने अपनी आँखों के तारे, दुलारे का बंध देखा। जाओ ! पन्ना !! जाओ !!! जब तक संसार है तब तक तुम्हारी अनन्तकीर्ति रहेगी। तुम्हारे यश की विमल ध्वजा पताका फहराती रहेगी। तुम्हारी कीर्ति की माला जपी जायगी। तुम सरीखी उन्नत हृदयों के लिये ही (१) कवि कहता है:—

“दूजे के हित प्राण दै” करै धर्म प्रतिपाल” ।

को ऐसो (२) शिवि के बिना, दूजौ है या काल ॥

कहो ! पाठक !! क्या चित्तौड़गढ़ को, मेवाड़भूमि को अब भी सच्चा तीर्थ न कहोगे ? भला सोचो तो सही इससे बढ़कर कौन सा पवित्र स्थान होगा, जहाँ धर्म और देश की रक्षा के लिये आत्मत्याग के ऐसे उदाहरण मिलते हैं। धन्य वह भूमि है जहाँ पन्ना जैसी उन्नत हृदया वासियां जन्म लेती हैं। पाँच हजार वर्ष से लगातार अनेक विपत्तियों के आने पर भी हिन्दू जाति जो अब तक जीवित है वह केवल पन्ना वासी जैसी स्त्रियों के कारण ही।

पन्ना ने अनेक स्थानों में उदयसिंह को छिपाने की चेष्टा की अनेक स्थानों में उदयसिंह को आश्रय देने की प्रार्थना की परन्तु कहीं भी आश्रय नहीं मिला। वनवीर के डर के मारे किसी को भी उदयसिंह को अपने यहाँ रखने की हिम्मत नहीं

(१) भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र (२) राजा शिवि ने अपने शरणागत में आये हुए एक ककूतर के बिये अपनी प्राणों को देकर उसकी रक्षा की थी। लेखक





हुई भला किसको अपने प्राणों से हाथ धोने थे, जो बनबीर ने दुश्मनी ब्राम्हणों। कितने ही स्थानों में आश्रय के लिये भटकती हुई लल्लुआ कमलमीर में पहुंची और कुम्भमेरु दुर्गाधिपति जैन धर्मचलम्बी आशासा से आश्रय भिक्षा मांगी। अपनी माता की आज्ञा से आशासा ने उदयसिंह को अपने यहां शरण दो और अपना भाजा कहकर उदयसिंह का प्रतिपालन करने लगे।

भला कहीं गूदड़ी में भी लाल छुपे हैं कहीं अग्नि भी वस्त्रों में छिपाने से भुप सकती है जैसे आग की जरा सी चिनगारी भी रुई के ढेर में नहीं छुप सकती है वैसे ही उदयसिंह भी छिप नहीं सके। धीरे धीरे उदयसिंह प्रगट होने लगे। सभी को पता लगा कि संग्रामसिंह के वंशधर जीते जागते हैं। उदयसिंह का पता पाते ही कमलमीर में अनेक राजपूत इकट्ठा होने लगे। मेवाड़ के बहुत से सरदार कमलमीर में इकट्ठे हुये, स्वनाम धन्य आशासा उदयसिंह को सरदारों के हाथ में दे कर निश्चिन्त हुये। सरदार गण कमलमीर दुर्ग में उदयसिंह के राजटीका लगाकर अत्याचारी बनबीर को वाण्पारावल के राजसिंहासन से हटाने की तैयारी करने लगे। दुःख सुख सभी बातों का अन्त होता है बनबीर के अत्याचारों की सीमा समाप्त हो चुकी थी। सरदारों के भय से \* बनबीर मेवाड़ छोड़कर दक्षिण की ओर भाग गया सन् १५४२ में वाण्पारावल की राजधानी चित्तौड़ पर उदयसिंह का अधिकार हुआ। यही उदयसिंह— हमारे चरित्र नायक प्रतापसिंह के पिता हैं, इनके समय में मेवाड़ का गौरव कहां तक घटा या बढ़ा, इस विषय में अगले परिच्छेदों को पढ़िये।

कोई कोई इतिहास लेखक कहते हैं कि नागपुर और बरार के भोंसले राजा—इसी बनबीर के वंशज हैं—लेखक



# दूसरा परिच्छेद

## जन्म और मेवाड़ की परिस्थिति

बालस्यापि रवेः पादाः पतन्त्युपरि भूभृताम्

अर्थः—प्रभात काल के बाल-सूर्य के किरण रूपी पैर पहाड़ों के शिर पर ही विराजते हैं।

विधाता की कुछ उलटी गति है। प्रायः देखा गया है। कि कपूत के सपूत और सपूत के कपूत होते रहते हैं, कीच से जिसको छूने को जी भी नहीं चाहता है, सुन्दर कमल उत्पन्न होता है जिसको देखते ही नेत्र प्रसन्न हो जाते हैं। और जिस प्रदीप से अन्धकार दूर होता है उस प्रदीप से भी भस्मा क्या उत्पन्न होता है? काला काजल, जिसको छूने को जी नहीं चाहता। जिसको छूते ही हाथों में कालोंच लग जाती है जभी कहना पड़ना है कि विधि की कुछ उलटी गति है। विधि की इस उलटी गति ने मेवाड़ के इतिहास में भी अपना ऐसा ही परिचय दिया है। राणा सांगा के उदयसिंह ऐसे पुत्र हुये जो मेवाड़ के राजसिंहसन के योग्य न थे। फिर उदयसिंह के प्रतापसिंह जैसे पुत्र हुए जिनको आज भी मेवाड़ का ध्रुव तारा कहा जाता है तभी तो कहना पड़ता है कि विधि के विधान को कौन रोक सकता है उसकी यति प्रबल है।

महाराणा प्रतापसिंह कहा करते थे कि यदि मेरे और



दादा जी राणा सांगा के बीच में और कोई न होता तो मेवाड़ की ऐसी अधोगति कभी न होती। मेवाड़ के चित्तौड़ दुर्ग पर कभी विदेशियों की ध्वजा पताका न फहराती, वास्तव में महाराणा प्रतापसिंह का कथन ठीक ही था।

उदयसिंह—बारह वर्ष की अवस्था में गद्दी पर बैठे। जिन राजपूत सरदारों ने कमलमीर में उदयसिंह के कपाल में राजदीका किया था उनमें भालौर के सरदार शोणिगुरु मुख्य थे। शोणि गुरु का वंश सदैव से अपने बीर व्रत पालन करने के लिये विख्यात है। उन्होंने उदयसिंह के साथ अपनी लड़की का विवाह करने का प्रस्ताव उपस्थिति किया। सब सरदारों ने मुक्तकण्ठ से उस प्रस्ताव को स्वीकार किया। अतएव उस प्रस्ताव के अनुसार शुभ मुहुर्त में शोणिगुरु की पुत्री के साथ कमलमीर में उदयसिंह का विवाह हुआ। अतएव विवाह के कई वर्ष पीछे उस शोणिवंशीय महीप—पुत्री के एक पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ। उस समय यह कौन जानता था कि एक दिन यह पुत्र रत्न महाराणा प्रतापसिंह के नाम से मेवाड़ और राजपूत जाति का ही नहीं बल्कि समस्त भारतवर्ष का मुखोज्वल करेगा।

शुक्ल पक्ष की द्वितीया के समान बालक प्रताप की दिन दूनी और रात चौगुनी कांक्षि और तेजस्विता बढ़ने लगी। यों तो महाराणा उदयसिंह के चौबीस लड़के थे। परन्तु प्रताप और उनसे छोटे लड़के शक्तसिंह साथ ही साथ खेलते कूदते थे। दोनों भाइयों में आपस में लड़कपन में ही विरोध भाव होने लगा। बात बात में विद्वेष भाव फैलने लगा जिसका बड़ा भयङ्कर परिणाम हुआ। परस्पर की विद्वेषाग्नि ने आगे चलकर मेवाड़ की स्वाधीनता को फूंकना चाहा था। प्रायः बचपन में, कोमल हृदय पर जो संस्कार जम जाते हैं वे बड़े-



पन में भी दूर नहीं होते हैं। कौन नहीं जानता कि कौरव पाण्डवों की बाल्यावस्था की विद्वेषाग्नि ने ही महाभारत का महासंग्राम मचवाया था। कौन नहीं जानता कि भीम और दुर्योधन की बचपन की लागडांट ने कुरुक्षेत्र में कुहराम मचा दिया था। कौन नहीं जानता कि कर्ण और अर्जुन के लड़कपन के द्वेष भाव ने महाभारत की महासमराग्नि में घी की आहुती छोड़ने का काम किया था। उसी विद्वेषाग्नि से प्रताप और शक्त का हृदय एक दूसरे के प्रति जल रहा था जिसके विषय में हम आगे लिखेंगे। परन्तु उस समय का भारतवर्ष आज कल का सा भारतवर्ष न था उस समय भारत वर्ष से क्षत्रियत्व मिट नहीं गया था। आजकल की भाँति मेज पर रखे हुये चाकू से क्षत्रिय डरते नहीं थे आज कल की भाँति उस समय कर्मयोगियों का कर्मयोग प्लेटफार्म पर चक़ता भाड़ने अथवा अखबारों में लेख लिखने में ही समाप्त नहीं होता था और बहुत हुआ तो किसी सभा सोसाइटी का संगठन कर लेना ही क्रियाशीलता की सीमा नहीं थी। उस समय की शूर वीरता केवल गले के फाड़ने अथवा लेखनी के घिसने में ही समाप्त नहीं होती थी। उस समय सच्चे वीरों का खेल तलवार था। बालक प्रताप और शक्त भी तलवार से ही खेलते थे। उस समय के इतिहास की यहां पर एक साधारण सी घटना उद्धृत करनी है जो असाधारण प्रतीत होगी। जिसको सुनते ही इस समय भी प्राण धर्दा उठते हैं। घटना यह है कि एक दिन एक तलवार नयी बनकर आई थी प्रताप और शक्त के पिता एक मोटी रस्सी मंगाकर उसकी धार को परीक्षा करने के लिये कह रहे थे। पर पाँच वर्ष के बालक जयसिंह से तल देखा गया कि मोटी रस्सी पर तलवार की धार की उज्ज्वलता की जाय। बालक शक्त सोचने लगा कि जो तलवार



युद्ध क्षेत्र में अगणित नरमुण्डों के तन से जुदा करने के लिये मंगायी गई है क्या उसकी जांच कच्चे सूत के धागे पर की जायगी ? बस हृदय में यह विचार उठते ही बालक शक्तसिंह ने उस तलवार का अपनी उङ्गली पर आघात किया । तलवार के आघात से बालक शक्त की उङ्गली में से रक्त का फवारा छूटने लगा । पर बालक के मुख पर नाममात्र को भी शोक का लक्षण प्रतीत नहीं हुआ वह प्रसन्न मुख हर्षोत्फुल्ल नेत्रों से रक्त की धार देखने लगा । भारी चोट के लगने पर भी उसकी आंखों में से आंसू की एक बूंद भी नहीं टपकी । पास में खड़े हुये सभी लोग चकित और स्तम्भित होकर बालक के मुख की ओर देखने लगे । अरे ! यह क्या पांच वष का बालक और यह दारुण साहस !!! परन्तु महाराणा उदयसिंह को बालक शक्तसिंह के इस साहस पर अत्यन्त क्रोध हुआ । उन्होंने क्रोधित होकर आज्ञा दी कि इस कुलकलङ्क बालक का सिर अभी तन से जुदा कर दिया जाय परन्तु पास में खड़े हुये सरदारों ने जैसे तैसे समझा बुझाकर महाराणा उदयसिंह जी का क्रोध शान्त किया । परन्तु उदयसिंह जी की भविष्य बाणी सत्य हुई, प्रतापसिंह जैसे मेवाड़ के नहीं नहीं भारत के मुखोज्वलकारी हुए, वैसे ही शक्तसिंह मेवाड़ के कुलकलङ्क देशद्रोही और जातिद्रोही हुए ! कोई कोई इतिहास लेखक यह भी कहते हैं कि शक्तसिंह की जन्म पत्री से वह निर्धारित हुआ था कि वह मेवाड़ के लिये कलङ्क स्वरूप होंगे, इसी के उदयसिंह उन से विरक्त रहते थे । इस कारण ही उन्होंने शक्तसिंह के सिर उतारने की उस समय आज्ञा दी थी । जो कुछ हो उस समय शक्तसिंह के जीवन की रक्षा हुई ।

जिस समय प्रताप और शक्त दोनों रामकुमार इस तरह तबे आमोद प्रमोद में जीवन व्यतीत कर रहे थे, उस समय



देखना चाहिये कि मेवाड़ की क्या दशा थी ? आइये ! पाठक !! आइये !!! उस समय बाण्णारावल की गद्दी पर राणा उदयसिंह जी बिराजमान थे, पर उदयसिंह जी में मेवाड़ के राणा होने योग्य कोई गुण न थे । वे वीर धर्म को भूलकर विलासिता में फंसे हुए थे वे एक वेश्या के प्रेम में फंसकर अपनी वंश परम्परागत मर्यादा को लात मार चुके थे । उनको अपने राज्य की सुध बुध कुछ भी नहीं रही थी ।

इतिहास के पाठकों से यह अविदित नहीं है कि राणा-सांगा की मृत्यु के थोड़े दिन पीछे ही उनका प्रतिद्वन्दी बाबर भी इस लोक से चल बसा था । बाबर के उत्तराधिकारी हुमायूँ को शेरशाह के कारण अपनी सल्तनत तक से हाथ धोना पड़ा था । बड़े बड़े सङ्कुटों का सामना करके हुमायूँ ने अपना खोया हुआ राज्य पाया था । उस समय राणा सांगा के समान कोई चतुर वीर मेवाड़ की गद्दी पर होता तो समस्त भारतवर्ष में अपना अखण्ड राज्य स्थापित कर लेता परन्तु मेवाड़ क्या समस्त राजपूताना नहीं नहीं समस्त भारतवर्ष में उस समय ऐसा कोई दूरदर्शी मनुष्य नहीं रहा था । इसी से मुगलों की उन्नति का मार्ग परिष्कृत होगया था । हुमायूँ के पीछे अकबर भी १२ वर्ष में ही अपने बाप के राजसिंहासन पर बैठा यदि अकबर और उदयसिंह की पारस्परिक तुलना की जाय तो बहुत सी बातों में समता मिलेगी । अकबर ने भी बाल्य में उदयसिंह जी के समान अनेक सङ्कुटों का सामना किया था । अनेक विपदों में फंसा था, परन्तु सङ्कुट और विपदाओं से उसका हृदय मजबूत होगया । उसने अनेक कठिन कष्टों में पड़कर धीरता और सहिष्णुता का नमूना प्रदर्शित किया था । अकबर ने भी अनेक कठिन कष्टों में पड़कर धीरता और सहिष्णुता का नमूना प्रदर्शित किया था । अकबर ने भी अनेक कठिन कष्टों में पड़कर धीरता और सहिष्णुता का नमूना प्रदर्शित किया था ।



इसलिये अकबर अपने बाप के राज्य को बढ़ानेवाला हुआ और उदयसिंह मेवाड़ को डुबोने वाले हुए ।

जिस समय हुमायूँ बिपत्ति का मारा मेवाड़ में पहुँचा वहाँ आश्रय चाहा तो मेवाड़ के राजा मल्लदेव ने उसको आश्रय देना तो दूर रहा उसको उलटा गिरफ्तार करना चाहा था । इसका कारण यह कहा जाता है कि मुग़लों के एक युद्ध में मल्लदेव का ज्येष्ठ पुत्र राममल मारा गया था । मल्लदेव ने इस अवसर पर हुमायूँ से वह बदला चुकाना चाहा था । हुमायूँ उस समय मल्लदेव के हाथ न आया, परन्तु साथ ही वह उस समय की अपने अपमान की बात भूला नहीं । दूसरी बार राज्य प्राप्त करने पर हुमायूँ थोड़े दिन के पीछे ही इस संसार से चल बसा था सो वह स्वयं तो मल्लदेव से बदला ले नहीं सका पर उसके बेटे अकबर ने बदला लेने की ठानी । अकबर की माँ ने उसको और भी मल्लदेव से बदला लेने के लिये उत्साहित किया । अकबर अपने बाप का अपमान भूलने वाला न था बस अपनी सेना लेकर मेवाड़ पर चढ़ दौड़ा । अजमेर में उसने अपनी सेना का पड़ाव डाला । उसने सन् १५६२ में मोरता किले पर अधिकार कर लिया । सबसे पहले जयपुर के महाराज बिहारीमल और उनके पुत्र भगवानदास ने अकबर की दासता स्वीकार करके पवित्र राजपूत कुल में कलङ्क लगाया था । केवल अकबर की अधीनता स्वीकार कर के जयपुर नरेश बिहारीलाल चुप नहीं हुये थे किन्तु उन्होंने

हिन्दू नरेशों ने अपने यहाँ की लड़कियाँ मुसलमान बादशाह को क्यों दे दी और उनकी लड़कियों को अपने यहाँ क्यों नहीं लिया इस विषय को लेकर बहुत से हिन्दुओं के पक्षपाती और विपक्षी लेखकों ने खिखियाँ उड़ाई हैं । किसी विज्ञ बुद्धिमान ने यह भी अटकल लगाया है कि मुसलमान बादशाहों के डरके कारण हिन्दू राजाओं ने खुशी से अपनी लड़कियाँ दे दी



अपनी एक कन्या का विवाह भी अकबर से कर दिया था इस भाँति बिहारीलाल ने राजपूताने का गौरव धूल मट्टी में मिला दिया । वश्यता स्वीकार करने और लड़की देने के कारण बिहारीलाल के पुत्र † भगवानदास और भगवानदास के दत्तक पुत्र मानसिंह ने अकबर के राज्य में उच्चपद प्राप्त किये । अस्तु पहली बार राजधानी में विप्लव मचने से अकबर मेवाड़ को बिना हस्तगत किये ही लौट आया । परन्तु वह चुप होने वाला नहीं था धीरे धीरे अपनी शक्ति पुष्ट करके पाँच वर्ष पीछे उसने मेवाड़ पर फिर चढ़ाई की, इस बार उसको सफलता भी प्राप्त हुई । जोधपुर, बीकानेर आदि राज्यों ने

यों । परन्तु मेरी समझ में इसका कारण यह प्रतीत होती है कि हिन्दूओं ने समझा कि मुसलमानों की लड़की अपने यहाँ आने से धर्म भ्रष्ट होगा । छूतछात का उस समय भारतवर्ष में बहुत प्रचार हो चला था । हिन्दू राजाओं ने समझा कि मुसलमानों की लड़कियाँ अपने यहाँ आने से सब एकामयी हो जायगी, इसलिये अपनी लड़कियाँ देकर बला टाळी । इसके अतिरिक्त एक प्रश्न यह भी है कि क्या मालूम राज महिषिया ही बादशाही घराने में गई थीं । किसी रत्नवासिनी दासी की पुत्रियाँ राजमहिषी की पुत्री कह कर ब्याह दी हों । अस्तु जो कुछ हो जयपुर, जोधपुरादि हिन्दू नरशों का यह काम निन्दनीय हुआ इसमें सन्देह नहीं जब तक इतिहास है यह कलङ्क दूर नहीं हो सकता । खूँदी के हाड़ाओं ने भी मेवाड़ के राणाओं के समान अपनी लड़की कभी बादशाहों को नहीं ब्याही । उन्होंने अकबर से यह सन्धि कर ली थी कि हम बादशाह को कभी ब्याह नहीं देंगे

—लेखक

† भगवानदास की बेटी अकबर के बेटे, सलीम को जो पीछे जहाँगीर के नाम से बादशाह हुआ, ब्याही थी । कहते हैं, अकबर खुद बरात लेकर भगवानदास के मकान पर गया था और वहाँ हिन्दूओं की रीति के अनुसार दोनों की ओर अग्नि के फेरे बड़े सब विवाह किया । सलीम की बहु अर्थात्



अकबर की अधीनता स्वीकार की, इतना ही नहीं जोधपुर के मल्लदेव के लड़के उदयसिंह ने अपनी ‡ जोधवाई का अकबर से बिवाह कर दिया। मालवा के राजा ने मेवाड़ के महाराणा उदयसिंह के यहां आश्रय लिया, इसलिये अकबर की दृष्टि चित्तौड़ पर पड़ी।

चित्तौड़ भूमि जैसी बीरों की खान है, वैसे ही प्रकृति की लीला निकेतन है। चित्तौड़ एक प्राचीन नगर है छोटी सी बनास नदी के किनारे पहाड़ पर बसा हुआ है। चीन की दीवाल से बढ़कर इसके चारों ओर दुर्भेद्य प्राचीर है। आजकल भी चित्तौड़ की शोभा देखने योग्य होती है। शहर-पनाह की दीवाल भी चारों ओर पर्वत के समान दिखायी पड़ती है। प्रधान द्वार “सुरमपोल” या सूर्यतोरण है। इस तोरण की रक्षा का भार सालुम्बर दुर्गेश्वर चन्द्रावत सरदार पर था। अकबर ने चित्तौड़ पर प्रथमबार आक्रमण किया तो वह सफल मनोरथ न हो सका। क्योंकि बादशाह अकबर की, उदयसिंह जी की प्रियपात्रिणी रूी के सामने दाल नहीं गल सकी। यह रूी क्षत्रियवीरों को साथ लेकर बादशाह की

भगवानदास की बेटी के डोले पर अशरफियां लुटाता आया। भगवानदास ने सौ हाथी, कई तबले घोड़े, बहुतेरी लौंडी गुलाम सोने चांदी के जवाहिर के असबाब, हथियार वर्तन दहेज़ में दिये अमीरों को जो बराती थे, इराकी, तुर्की, लाज़ी सोने रूपे के साज़ समेत घोड़े दिये। पाठकों ने इस बिवाह के हाल को पढ़कर समझ लिया होगा कि अकबर कितना चालाक और कुटिल नीतिज्ञ था वह समझ गया था कि जब तक हिन्दू राजाओं से मेल नहीं किया जायगा, तब तक भारतवर्ष में मुगलों का राज्य नहीं जमेगा इसलिये वह यह सब चलाकी चकत्ता था। लेखक

‡ जोधवाई के गर्भ से ही अकबर के ज्येष्ठ पुत्र सलीम का जन्म हुआ



छावनी तक ही नहीं किन्तु बादशाह के तम्बू तक आक्रमण करती हुई चली गई। राजपूतों की मार के सामने मुसलमान ठहर न सके। राणा उदयसिंह ने इस विजय का यश स्त्री को ही देना चाहा। इस पर राजपूत सरदारों ने क्रोधित हो कर उस स्त्री को ही मार डाला। हमारे देश में घर की फूट से बाहर के शत्रुओं ने बड़ा लाभ उठाया है। अकबर ने भी घर की अनबन से लाभ उठाने का सहज उपाय सोचा। उसने राजपूतों के घर की अनबन सुनते ही चित्तौड़ पर सम्बत् १६२० ( सन् १५६८ ) में फिर धावा किया। इस बार अकबर अपने साथ बहुत सी फौज लेकर आया। और चित्तौड़ को घेर लिया। किसी किसी इतिहास लेखक का कथन है कि अकबर की सेना इतनी थी कि दस दस मील तक लम्बी उसकी छावनी पड़ी हुई थी। राणा उदयसिंह ने इस समय बड़ी कायरता दिखलायी, वह चित्तौड़गढ़ छोड़ कर भागा पर राजपूत वीर कायर नहीं थे। उनकी विलास-प्रिय महाराणा की ओर लाख अभक्ति हो, परन्तु चित्तौड़ की ओर उनकी दृढ़ भक्ति थी। चित्तौड़ उनको अपने प्राणों से भी प्यारा था। चित्तौड़ के गौरव में प्रत्येक राजपूत अपना गौरव समझता था। चित्तौड़ की अप्रतिष्ठा होना प्रत्येक राजपूत अपनी अप्रतिष्ठा समझता था अतएव महाराणा के भाग जाने पर अनेक राजपूत—“एक लिंगेश्वर की जय” “बाप्पा-रावल की जय” आदि आकाश गुंजाने वाली ध्वनि करते हुये चित्तौड़गढ़ की रक्षा के लिये एकत्रित हुये। अगणित राजपूत वीर सूर्यतोरण की रक्षा के लिये आये। बदतोर के जयमल राठौर और केलना के पत्ता जी, ( पूत या पत्तू भी कहते हैं ) आये। जयमल राठौर मेड़ता के राव थे। परन्तु घरेलू झगड़े के कारण उदयसिंह उनको उदयपुर ले आये थे। जयमल



और पत्ता का नाम आज भी इतनी शताब्दियों के बीत जाने पर राजस्थान के बालक, बूढ़े भी बड़े आदर के साथ लेते हैं ।

वास्तव में इस युद्ध में मेवाड़ के वीरों ने अपनी स्वाधीनता और चित्तौड़ के किले के गौरव की रक्षा के लिये अपने प्राणों की बाजी लगा दी थी । इस युद्ध में वहाँ की सुकोमल अबलाओं ने भी अपने अपूर्व साहस से बादशाह अकबर तक के दांत खट्टे कर दिये थे । जिस समय सूर्यतोरण के पास सलूंवर के राव मारे गये तब राजपूत सेना की सरदारी केलवा के पत्ता जी को सौंपी गयी । पत्ता जी की अवस्था केवल सोलह वर्ष की थी । उनके पिता इससे पहले एक युद्ध में मारे गये थे । अपने माता पिता के इकलौते पुत्र थे । परन्तु जिस समय उनको सेना का भार सौंपा गया था तब उनकी माता तनिक भी विचलित नहीं हुई । पहले समय में राजपूत मातायें देश और धर्म के लिये मरना अपना सौभाग्य समझती थीं । भारतवर्ष का वह समय ऐसा ही था कि जब राजपूत माता अपने पुत्र को युद्धस्थल में विदा करते समय यह उत्साह पूर्ण वचन कहती थीं कि जाओ ! बेटा ! जाओ ! ! जीते रहोगे तो स्वाधीनता भोगोगे और मर गये तो सीधे स्वर्ग को जाओगे । राजपूत माताओं के अपनी सन्तानों के प्रति देश और धर्म की रक्षा के लिये ऐसे उत्तेजना पूर्ण शब्द होते थे । पत्ता जी की माता भी उन राजपूत रमणियों में से थीं अपने देश और धर्म की रक्षा के लिये सर्वस्व न्यौछावर करने को तय्यार रहती थीं । उन्होंने अपने प्यारे पुत्र को वीरधर्म पालन करने के लिये सहर्ष आज्ञा दी थी । केवल इतना ही नहीं वह वीरबाला अपनी पुत्रा और पुत्रबधू पत्ता जी की स्त्री को साथ लेकर स्वयं बादशाह अकबर के मुक़ाबिले के लिये युद्धस्थल में आई । सुनते हैं जिस समय बादशाही



सेना चित्तौड़ के निकट पहुंचने लगी, उस समय इन तीनों अबलाओं ने अपने अचूक निशानों से मुगल सेना के धुरे उड़ा दिये थे। बादशाह अकबर उक्त तीनों वीराङ्गनाओं की बहादुरी पर इतने प्रसन्न हुये थे कि उन्होंने आज्ञा दी थी कि जो कोई इन तीनों वीराङ्गनाओं को पकड़कर लावेगा वह मुह मांगा ईनाम पावेगा परन्तु उस हुल्लड़ में कौन सुनता था एक एक करके तीनों वीर रमणियां भूतल शायी हुई और इस लोक में अपनी अनन्त और अक्षय कीर्ति छोड़ गई। तीनों वीराङ्गनाओं की वीरता देखकर चित्तौड़ के वीर और भी दूने उत्साह से शत्रुओं का मुकाबला करने लगे।

अगणित शत्रुओं के सामने मुठी भर राजपूत कब तक लड़ सकते थे, आखिर प्रचण्ड अग्नि के समान अपनी तेज-स्विता दिखलाकर धीरे धीरे भूतलशायी होने लगे। सोलह वर्ष के बालक अभिमन्यु ने महाभारत के महा संग्राम में कौरवों के चक्रव्यूह में अनुपम वीरता का परिचय दे अपने वीरियों के कलेजे दहला दिये थे। वीर वर अभिमन्यु के समान ही पत्ता जी ने अपने साहस और पराक्रम से मुसलमानी सेना के बड़े बड़े वीरों के हृदय काँपा दिये थे। जिस तरह से प्रचण्ड आंधी बड़े पेड़ों को उखाड़ कर थम जाती है। उसी तरह से महावीर पत्ता जी अपनी तलवार से मुगल सेना के अनेक बहादुरों के सिर गाजल मूली की भांति काट कर अन्त में मारे गये। पर राजपूत वीरों ने अपना साहस नहीं छोड़ा “कार्य वा साधेयम् शरीरं वा पातेयम्” मृत्यु का देखना अथवा कार्य का साधन इस सिद्धान्त को ग्रहण कर के लड़ने लगे। जयमल राठौर ने दुर्ग की रक्षा का भार अपने ऊपर लिया। इस भीषण संग्राम में हमारे चरित्रनायक भारत के पुण्यश्लोक महाराणा प्रताप-



सिंह ने जयमल राठौर की अधीनता में अपूर्व साहस और वीरता से युद्ध किया था जिससे राजपूतगण उनके पिता का कुत्सित व्यवहार भूल गये ।

इस युद्ध की आदि से अन्त तक आलोचना करते हुये कहना पड़ेगा कि चित्तौड़ से भाग्य विधाता रूठा था यदि ऐसा न होता तो क्या मेवाड़ का पतन होता । वीर जयमल ने भी अपनी वीरता में कसर नहीं की अपने जीते जी चित्तौड़ का किला दुश्मन के हाथ में नहीं लगने दिया । पर होनी को कौन टाल सकता था ? एक दिन रात को जयमल मशाल के उजाले से दुर्ग की बुजों की मरम्मत करा रहे थे कि अकबर ने जो किला घेरे पड़ा था, उन्हें पहचान लिया, ताक कर ऐसा निशाना मारा कि जयमल उसी जगह लोट गये । दूरदर्शी जयमल ने देखा कि अब मेरा अन्तिम समय है, बच नहीं सकता हूँ, काल के गाल में जा रहा हूँ और अब चित्तौड़ भी बीरी के हाथ से बच नहीं सकता है । तब उन्होंने बचे हुए अपने आठ सहस्र योद्धाओं को केसरिया बाना पहिनने और द्वार खोलने की आज्ञा दी । आज्ञा देते ही किले का दरवाजा खुल गया और राजपूतगण बादशाही सेना पर दूट पड़े और सेना लड़ कर वीरगति को प्राप्त हुई । \* नौ रानियाँ, पाँच राजकुमारियाँ, दो छोटे राजकुमार और बहुत से सरदारों की सब स्त्रियाँ उस समय जब राजपूत लोग केसरिया बाना पहन, किले का फाटक खोलकर बाहर निकले थे, अग्नि में जलकर भस्म होगई । चित्तौड़गढ़ में यह तीसरा शाका हुआ ।

ॐ सरदारों के अनुरोध से चित्तौड़ के पतन के पूर्व ही प्रतापसिंह तथा कुछ आदमी युद्धक्षेत्र से उदयपुर चले गये थे । यदि प्रतापसिंह उस समय उदयपुर न जाते तो राजस्थान का कमल खिलने से पहिले ही मुरझा जाता । —लेखक



यह युद्ध कैसा भयानक हुआ होगा, उसका केवल टाड़ साहब के कथन से ही पता लग सकता है कि जब मरे हुए वीरों के यज्ञोपवीत तोले गये, तब तौल में ७४॥ ( साढ़े चौहत्तर ) मन हुए । किसी किसी का अनुमान है कि उस समय मन चार सेर का होता था । खैर चार सेर का ही सही । पर एक जनेऊ एक तोले का भी रक्खा जावे तो लगभग पच्चीस हजार से अधिक आदमी इस युद्ध में काल के गाल में गये । इस घटना को सदैव स्मरण रखने के लिये अकबर की आज्ञा से ७४॥ चिट्ठियों के लिफाफे पर लिखा जाने लगा । इसका तापर्य्य यही है कि जो कोई किसी दूसरे की चिट्ठी पढ़ेगा उसको चित्तौड़ध्वंस का पाप लगेगा । भारत के प्रान्तों में थोड़ी बहुत अभी तक यह प्रथा जारी ।

अकबर की चिर अभिलाषा पूर्ण हुई, चित्तौड़गढ़ उसके हस्तगत हुआ । पर उस समय चित्तौड़ में रक्खा ही क्या था ? चित्तौड़ नगरी श्मशान पुरी बनी हुई थी, जनशून्य थी । बादशाह अकबर ने ऐसे जनशून्य श्मशान चित्तौड़ नगरी पर अधिकार प्राप्त किया । चाहे चित्तौड़ श्मशान पुरी हो चाहे जनशून्य नगरी हो पर \* बादशाह की बहुत दिनों की लालसा चित्तौड़ गढ़ को हस्तगत करने की पूर्ण हुई ।

पञ्जाब के प्रसिद्ध विद्वान, डाक्टर गोकुलचन्द्र एम० ए० पी० एच० डी० के "The Transformation of Sikhism" नामक पुस्तक से ज्ञात होता है कि अकबर—चित्तौड़ दुर्ग को जीतने के लिये इतना उत्सुक था, कि उसने सरहिन्द के भगवानदास खत्री नामक अपने एक विश्वास-पात्र कर्मचारी को सिक्खों के गुरु अङ्गद के पास यह प्रार्थना करना के लिये भेजा कि चित्तौड़गढ़ अकबर के हस्तगत हो । गुरु उस समय बाबली अक्तवस में लगे हुये थे, उन्होंने कहा:—ज्योंह कुंए का चक्र अपने स्थान पर बैठ जायगा त्योंही चित्तौड़गढ़ विजय हो जावेगा" शायद गुरु चित्तौर के



जिस अकबर की प्रशंसा में इतिहासकारों ने आकाश या पाताल के पुल बांध दिये हैं। उस अकबर ने चित्तौड़ पर विजय प्राप्त करके अपने पाषाण हृदय और नृशंस स्वभाव का परिचय दिया। उसने चित्तौड़ नगरी पर बड़े बड़े अत्याचार किये। नराधम, पापी अलाउद्दीन खिलजी और मालवा के बादशाह बहादुर के हाथ से जो राजकीय चिन्ह बच गये उन सबका मटियामेट अकबर ने किया। देवालय और मन्दिरों के कलश और शिखर यवनों के पैर तले रौंदे गये। चित्तौड़ की सुन्दर अट्टालिकाएँ और पवित्र मन्दिर गिराकर ज़मीन के बराबर किये गये। जिन नगाड़ों की ध्वनि कोसों तक पहुँचकर गिहलोर नरेशों की महिमा प्रगट करती थी जिनकी ध्वनि से मेवाड़ के बैरियों का कलेजा धड़कता था। जो बहुमूल्य दीपवृक्ष अपने विमल प्रकाश से भगवती चतुर्भुजा के मन्दिर की शोभा बढ़ाते थे और जिन सुन्दर किवाड़ों

इतिहास को नहीं जानते थे, तब ही उन्होंने ऐसी बात कही थी। इसमें समदेह नहीं कि अकबर एक दूरदर्शी और बुद्धिमान बादशाह था तथापि यह कतिपय सूढ़ विश्वासों से नहीं बचा हुआ था। यद्यपि वह अपने सिर लुई ११ वें के समान अपनी टोपी में समस्त ईसाई सेण्टों की तसवीरें लेकर न चलता था, परन्तु इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं कि वह आपत्ति के समय में सहायता की याचना के लिये साधुओं तथा पवित्र मन्दिरों तक पहुँचा करता था। यह हो सकता है कि उसने ज्वालामुखी के मन्दिर को हिन्दुओं को प्रसन्न करने तथा अपनी ओर मिलाने के लिये मरम्मत की हो परन्तु यह बात असन्दिग्ध है कि दरवेशों तथा दरगाहों में यह समयोपयोगी राजनीति के कारण ही श्रद्धा नहीं दिखलाया करता था। देखो सचारीख फरिश्ता का ४९० पेज जिसमें ज्ञात होता है कि वह अनेकवार निज़ामुद्दीन औलिया तथा सुईनुद्दीन चिश्ती की दरगाहों तक पैदल यात्रा करके गया था।



से चित्तौड़ के बड़े बड़े द्वार चमक दमक रहे थे। उन सबको अकबर अपने नवीन नगर अकबराबाद को सजाने के लिये ले गया था परन्तु इस तरह से राजकीय चिन्हों का मटिया-मेट करने पर भी अकबर जयमल और पत्ता की वीरता को नहीं भूला। उसने दिल्ली में अपने राजमहल के सामने जयमल और पत्ता की हाथी पर चढ़ी हुई पत्थर की दो मूर्तियाँ बना रखी थीं। ठीक ही हैसब्बे शूरमा की कौन प्रशंसा नहीं करता है! सच्चे शूरवीर के सामने उनके शत्रुओं को भी अपना मस्तक झुकाना पड़ता है।

आइये। पाठक !! आइये !!! अकबर की करतूत तो देख चुके अब उदयसिंह जी की भी सुध लेनी चाहिये। जब अकबर चित्तौड़ गढ़ घेरे पड़े हुये थे, दोनों ओर से रणचण्डी का लास्य नृत्य हो रहा था। तब उदयसिंह ने देखा कि अभी युद्ध की समाप्ति नहीं है न मालूम अभी कितने दिन और युद्ध हो। यह विचार कर उन्होंने चित्तौड़ छोड़ दिया, पहले उन्होंने राजाधिपाल नामक स्थान में गोहलों के यहां आश्रय लिया। फिर और भी दक्षिण अरावली पर्वत श्रेणी के मध्य में बड़े। वहां उन्होंने कई वर्ष पहले एक सरोवर और सुन्दर भवन बनवाया था उस सरोवर का नाम पड़ा था—उदयसागर और उस महल का नाम नचौकी। उस जगह जाकर उदयसिंह ने आश्रय लिया था—इसी लिये वह स्थान समस्त मेवाड़ की राजधानी हुई, पीछे उसका नाम उदयपुर पड़ा।

उपर्युक्त घटना अर्थात् चित्तौड़ पतन के पीछे उदयसिंह जी चार वर्ष और जिये चित्तौड़ में उनका राजत्व, राज सम्मान और राजवैभव था पर वह सब कुछ होने पर भी राजनीतिज्ञ न था। वीर केसरी प्रतापसिंह उदयपुर में न रह कर कमलमीर में रहना पसन्द करते थे। उदयसिंह जी का



प्रतापसिंह की ओर स्नेह भी न था । संसार भी कैसी अद्भुत घटनाओं से भरा हुआ है, प्रायः इतिहास में देखने में आया है कि जिन राजकुमारों को उनके पिता राजाओं ने स्नेह की दृष्टि से नहीं देखा है, उन्हें समस्त संसार ने आदर और स्नेह की दृष्टि से अपनाया है । कौन नहीं जानता कि प्रह्लाद को उसके बाप राजा, हिरण्यकश्यप ने क्या क्या यन्त्रणायें पहुंचाने की चेष्टायें नहीं की थीं । पर आज प्रह्लाद के नाम पर संसार मोहित है । ध्रुवजी के पिता ने उनको कब आदर की दृष्टि से देखा था, पर आज संसार के बहुत से मनुष्य उनके नाम की माला जपते हैं । शिवाजी महाराज अपने पिता के कब लाड़ले, दुलारे थे ? पर अपने पिता के ललकारे दुतकारे शिवाजी महाराष्ट्र देश में से यवनों के राज्य को उखाड़ पछाड़ के हिन्दुओं की ध्वजा पताका फहरा कर संसार में अपना नाम अमर कर गये । । यही दशा महाराणा प्रतापसिंह की हुई, जो अपने पिता के स्नेह भाजन न थे, वे ही अपनी अलौकिक वीरता से आज भी समस्त मेवाड़ के नहीं नहीं समस्त भारतवर्ष के पूजनीय देव होगये हैं । कहिये पाठक ! प्रताप अपने किन गुणों से इतना उच्च स्थान प्राप्त कर गये हैं ? यदि उन कारणों के ढूँढ़ने की इच्छा हो तो आइये अमले परिच्छेदों में देखें । जिससे पता लगे कि आज भी, इतनी शताब्दियां बीत जाने पर भी प्रतापसिंह क्यों पूजनीय हैं ? भारतमाता के एक से एक योग्य पुत्र होने पर भी प्रतापसिंह और गुरु गोविन्दसिंह आदि महापुरुषों के नाम पर आनन्द से हृदय नृत्य क्यों करने लगता है ? इस बात को जानते हो न ? नहीं जानते हो तो एकबार सोचो । अपने हृदय से इस प्रश्न का उत्तर पूछो ? कि प्रतापसिंह का नाम मोहित करने वाला क्यों है ।



# तीसरा पहर

## राज्य प्राप्ति

“हे कुंवर तुम को राज दे,  
सिर अचल छत्र फिराई है।”

( हरिश्चन्द्र )

सन् १५७२ में गोलकुण्डा नामक स्थान में ४२ वर्ष की अवस्था में मेवाड़ के अधीश्वर महाराणा उदयसिंह का देहान्त हुआ। उस समय मेवाड़ की कैसी दशा थी, सो ऊपर लिखा जा चुका है। वास्तव में उदयसिंह नाम में ही कुछ दोष मालूम होता है। बादशाह अकबर के समय में राजस्थान में दो उदयसिंह हुये, पर दोनों ही कुल कलङ्क हुये। महाराणा उदयसिंह के समय में मेवाड़ का पतन हुआ और मारवाड़ के “मोटे राजा” उदयसिंह ने अकबर की दासना स्वीकार करके और उसको अपनी बहिन जोधबाई को व्याह करके बादशाह के साले बनने के कलङ्क का टीका अपने मत्थे लगाया। महाराणा उदयसिंह मरते समय एक और भी राजपूत वंश परम्परा, लोकाचार और शास्त्र विरुद्ध कार्य करा गये। सदा की उत्तराधिकारी विधि को टालकर, पुरानी शुद्ध समातन प्रथा को मेट कर अपनी छोटी प्यारी रानी के कुमार जगमल को उत्तराधिकारी बना गये, उदयसिंहजी के चौबीस लड़के थे। चौबीसों लड़कों में से जगमल सब में छोटे थे और महाराणा प्रतापसिंह सब से बड़े थे। इस विचार से विशौद्य का



राजसिंहासन और राजमुकुट प्रतापसिंह का था । परन्तु नहीं, उदयसिंह ने इसका कुछ विचार नहीं किया । वे अपनी प्यारी छोटी रानी के प्रेमपाश में बंधे रहने के कारण कुल मर्यादा, विवेक, बुद्धि, लोकाचार और शास्त्रों के विधान आदि सभी को बिसर्जन कर चुके थे । उन्होंने जगमल को उत्तराधिकारी बनाकर अपने पुत्रों में नया भगड़ा खड़ा कर दिया । मेवाड़ में भी यह रीति है कि एक राजा के मरने पर दूसरे को गद्दी हो जाती है । एक ओर तो राज परिवार के लोग कुल पुरोहितों के साथ शोक मनाते हैं । दूसरी ओर प्रजावर्ग अपने मकानों की सफाई करती है, अपने घरों को सजाती है और दूसरी ओर नये राजा का अभिषेक होता है । “ King is dead, Long live the King ”— अर्थात् “ राजा मर गया पर राजा युग युग जिओ ” इस कहावत के अनुसार मेवाड़ का राजसिंहासन भी राजा बिना खाली नहीं रहता है । बस इस नियम के अनुसार ही जब उदयसिंह जी का अन्त्येष्टि संस्कार हो रहा था । तब कुमार जगमल गद्दी पर बैठे । जगमल को क्या मालूम था:— “ Man Proposes but God disposes मनुष्य अपने विचारों के पुल बाँधता है पर परमेश्वर ढाह देता है । “ मेरे मन में और कर्ता के मन और ” बेचारे जगमल को क्या खबर थी कि इस उपर्युक्त कहावत के अनुसार उसके भाग्य में राजसिंहासन का सुख बदा ही नहीं है । जिस समय जगमल राजगद्दी पर बैठकर अपनी चपलता की सीमा प्रकट कर रहे थे उस समय स्मशान भूमि में कुछ और ही प्रस्ताव हो रहा था ।

उदयसिंह चाहें अपनी वंश परम्परा को भूल गये, चाहे वे लोकाचार और शास्त्र विरुद्ध कार्य कर गये हैं पर राजपूत सरदार वंश परम्परा की रीति को लोकाचार और धर्म को



भूले नहीं थे। राजपूतगण मुसलमानों के समान नहीं थे कि शाहजहां के सबसे उत्तराधिकारी दारा और शिवाजी को मारकर उसका छोटा भाई औरङ्गजेब दिल्ली के तख्त पर बैठ गया और किसी ने चूं तक नहीं की। राजपूत सरदारों को उदयसिंह जी का यह कार्य पसन्द नहीं आया। भालाराधिपति शोणिगुरु सरदार को उदयसिंह जी का यह अनुचित कार्य बहुत ही खटका वह अपने भाज्जे प्रताप को ही गद्दी पर बिठलाने के लिये व्यग्र थे और मेवाड़ के प्रधानमन्त्री, चूड़ावत कृष्णसिंह से पूछने लगे कहिये आप बड़े पुत्र प्रताप के होते हुये छोटे पुत्र जगमल को गद्दी दिलाने के लिये कैसे सहमत होगये आपके रहते हुये यह कुमन्त्रणा कैसे हुई ? आपके रहते हुये यह कुचिचार कैसे हुआ ? आपने इस न्याय विरुद्ध कार्य का क्यों अनुमोदन कर लिया। राव ने भालाराधिपति शोणिगुरु के प्रश्न का हंसकर उत्तर दिया। यदि अन्तिम समय में रोगी को कुपथ्य सेवन की इच्छा हो तो उसे कौन रोक सकता है। यदि अन्तकाल में रोगी दूध मांगे तो उसे देने में हानि हो क्या है ? इतना कहकर राव थोड़ी देर के लिये चुप हो गये पीछे कहने लगे कि चित्तौड़ के राजसिंहासन के लिये मैंने आपके भाज्जे प्रताप को ही चुना है निश्चय मानिये गा कि प्रताप के रहते हुये मैं मेवाड़ का राजमुकुट किसी दूसरे के सिर पर नहीं देख सकूंगा मैं प्रताप के पास ही खड़ा होऊंगा।

इधर यह बात बीत हो ही रही थी, उधर जगमल राजा जी की गद्दी पर बैठा हुआ था। प्रतापसिंह अपने पिता के व्यवहार से दुःखित होकर घोड़ा कस कर मेवाड़ छोड़ने की तयारी कर रहे थे। इस बीच में सरदारों ने प्रतापसिंह को जाने से रोक और ग्वालियर के राजपूत राजा के साथ रावत कृष्णसिंह जगमल के पास पहुंचे। जगमल ने उनके पद के



अनुसार, उन की अर्भ्यना की सही पर उन दोनों ने वहाँ पहुँच कर जगमल की एक एक बांह पकड़ कर नीचे एक आसन पर बिठला दिया और उससे कहा:—कुमार ! आपने धोखा खाया है इस गद्दी पर केवल प्रतापसिंह के अतिरिक्त और किसी को बैठने का अधिकार नहीं है। ऐसा कह कर उन्होंने प्रतापसिंह के तलवार बांध दी, सालाम्बा अधिकारी ने प्रतापसिंह को राजसीवस्त्र पहिनाये और फिर राजसिंहासन पर बिठला दिया। यह सब हो चुकने के बाद मेवाड़ की पृथा के अनुसार प्रताप ने ज़मीन तक झुक कर तीन बार प्रणाम किया। चारों ओर से आकाश की गुंजानेवाली ध्वनि महाराणा प्रतापसिंह की जय होने लगी। यह सब कृत्य होते देख कर जगमल चुप हो गया, उसने चुनू तक नहीं की। परमेश्वर की भी क्या माया है थोड़ा देर पहले जो मेवाड़ के राज-सिंहासन की आशा लगाये हुए था वह जमीन पर बैठाया गया, जो निराश होकर अपनी जन्मभूमि को अन्तिम प्रणाम कर रहा था। वह मेवाड़ का अधीश्वर हुआ। जभी तो कवि कहता है कि “रीते भरे ढरकाने महर करें तो फेर भरें” ।



# चौथा परिच्छेद।

## अहेरिया का उत्सव

बन्धु यह मलिन वेष तजि डारो ।

आलस बन्द तोड़ अब या छन याको येग उतारो ॥

तम कारण न लखत अबहिं लौं अब हैमयो उजारो ॥ बन्धु ० ॥

को कट फटो वस्त्र केवल पै हृदय न मलिन तुम्हारो ॥

तासे तजि ऊपरों मलिनता यह कलंक को टारो ।

बन्धु अब चूकन को समय रह्यो नहिं बैठे काह विचारो ॥

“माधव,, अवसर गये न मिलि हैं लाख जतन कर हारो ।

बन्धु अब मलिन वेष तजि डारो ॥

—प० माधव गुरु

वसन्त ऋतु के समय में महाराणा प्रतापसिंह ने मेवाड़ का राज सुकुट अपने मस्तक पर रखा था । उन दिनों अहेरिया का उत्सव निकट था । महाराणा प्रतापसिंह ने आज्ञा दी कि सब लोग शिकार खेलने के लिये जङ्गल में चले । और भगवती गौरी के सामने बाराह-बलि देकर आगामी वर्ष का फल देखें । और आने वाले वर्ष का फलाफल आज के दिन निश्चय करें । सामन्त सरदार महाराणा की इस आज्ञा को शिरोधार्य करके अच्छे घोड़े, हथियारों को सुसज्जित करके जङ्गल में शिकार खेलने के लिये चले । महाराणा भी अपने सामन्त सरदारों के साथ चले । आनन्द में भरे सब शिकार खेलने लगे । सभी उपस्थित जन आखेट के फल पर मेवाड़ के भविष्य सुभाषुम का विचार करने लगे । महाराणा भी अपने सरदारों को इस अवसर पर उत्साहित और उत्तेजित करने लगे । अपने सरदारों को बड़े गम्भीर और भीरु उत्साह



पूर्ण शब्दों में कहने लगे:—सरदारगण ! मेवाड़ के बीरो !! स्मरण रखो कि आज बाराह के शिकार पर ही मेवाड़ भाग्य की परीक्षा निर्भर है । मत समझो कि केवल शान्ति समय में षोडशोपचार सहित घन घोर घंटा ध्वनि करके ही भगवती के सामने बाराह की बलि देने से ही कार्य की सिद्धि हो जायगी । माता के सामने बन सूअरों को बलि देते हो तो भले ही दो, लेकिन अच्छी तरह से याद रखो कि हमारा महाव्रत जो चित्तौड़ को स्वाधीन करने का है वह केवल बन-बारहों के बलिदान करने से नहीं हो सकता है । देखते नहीं हो कि समस्त राजपूताना पापी नराधम मुगलों से ग्रस्त हो रहा है । मेवाड़ की, राजपूताने की राजपूत जाति की स्वाधीनता हरण हो गई है । माता भगवती की परम पवित्र मूर्ति यवनों द्वारा पदाक्रान्त हुई है । भगवती चतुर्भुजा की मूर्ति यवनों की ठोकरी से टकराई गई है । इस महोत्सव करने का प्रयोजन यही है कि हम सब राजपूताने से मुगलों को खदेड़ने की, अपनी प्यारी जन्मभूमि चित्तौड़ को मुगलों के हाथ से उद्धार करने की अटल प्रतिज्ञा करें । जिस तरह से आज हम बन-बारहों का शिकार करते हैं, वैसे ही राजपूत जाति के शत्रुओं का शिकार करें । महाराणा के मुखारविन्द से ऐसे उत्साह-पूर्ण शब्द सुन कर उपस्थित समस्त सरदार झण्डलो ने आकाश गूँजनै वाली यह ध्वनि की कि “महाराणा प्रतापसिंह की जय” “मेवाड़ाधिपति की जय” “भगवान एक लिङ्ग की जय” । तदनन्तर सभी लोग आखेट में प्रवृत्त हुये असंख्य बाराहों का शिकार हुआ उस दिन के आखेट में सफलता प्राप्त करके समस्त राजपूतों ने समझ-लिया कि भविष्य में कुछ अच्छी ही बात होने वाली है । सब प्रसन्नता पूर्वक आखेट से लौट आये ।



# पंचवां पारच्छेद

रङ्ग में भङ्ग

\*सौहृदेन परित्यक्तं निःस्नेहं खलमुत्सृजेत् ।  
सौदर्यः भ्रातरमपि किमुतान्यं प्रथमजनम् ॥  
दूजे के हित प्राण दै, करै धर्म प्रतिपाल ।  
को पेंसो शिवि के बिना, दूजो है या काल ॥

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

हम पहले कह आये हैं कि प्रतापसिंह और शक्तसिंह, दोनों भाई थे । बाल्यावस्था में दोनों का लालन पालन, खेल कूद, शिक्षा दीक्षा, एक ही साथ हुई थी । प्रायः बालकों में एक दूसरे से खेल कूद में वैमनस्य भाव हो जाता है । वैसे ही बचपन में प्रताप और शक्ति दोनों में हो गया । धीरे धीरे इस द्वेष भाव ने दोनों भाइयों के ऊपर विशेष रूप से अधिकार प्राप्त कर लिया । आगे चल कर इस द्वेषभाव के कारण दोनों भाई एक दूसरे के शत्रु बन बैठे ।

अहेरिया उत्सव के दिन अनेक राजपूत वीरों ने घने जङ्गलों में घुस कर बहुत से बाराहों का शिकार कर के अहेरिया उत्सव मनाया । देवी के सामने अनेक बाराहों का बलि-कurban दिया और महोत्सव से उस वर्ष का फल भी अच्छा मिल रहा था । सब की आशायें सहायण प्रतापसिंह पर बंधी

—दोनों भाई को भी स्नेह करके चाहिये जिसने मित्रता छोड़ दी है और जिसने स्नेह नहीं है और की तो बात ही क्या है ?—केवल



परन्तु हाय ! इस महोत्सव के समय पर ऐसी दुर्घटना हो गई जिस से सभी के प्राण थर्रा उठे और चित्तौड़ के शत्रुओं को प्रतापसिंह के बैरियों को वह घटना एक प्रकार से सहायता पहुंचाने वाली हुई। किसी अंश में यह भी कहा जा सकता है कि वह घटना मेवाड़ के इतिहास को ही पलटने वाली हुई।

अहैर के उत्सव के दिन जिस समय समस्त राजपूत वीर मण्डली चारों ओर बाराहों के शिकार करने में लगी हुई थी सभी लोग प्राणपण से यह चेष्टा कर रहे थे कि वीरता में कौन श्रेष्ठ है अथवा यों कहियेगा कि सभी लोग अपनी अपनी श्रेष्ठता दिखलाने की चेष्टा कर रहे थे। उसी समय यह घटना हुई।

उसी समय दोनों वीर भ्राता प्रतापसिंह और शक्तसिंह में पिछला विद्वेष भाव जागृत हो उठा। दोनों के बीच में भयङ्कर विवाद उपस्थित हुआ। विवाद का कारण यह था कि सभी के हृदय में आखेट करने की लौ लगी हुई थी सभी को अपनी वीरता दिखाने और यश प्राप्त करने की लालसा बढ़ रही थी। किसी को किसी की सुध न रही छोटे बड़े का कुछ भेद भाव नहीं रहा। प्रताप और शक्त दोनों भाई एक साथ ही शिकार के लिये चले उन दोनों के पास ही एक बरबाराह दिखाई दिया। वे दोनों भाई बाराह की ओर लपके बेचारा बाराह भी अपने प्राणों के मोह से कठिन जञ्जाल से बचकर भागने लगा पर वह भाग कर जाता ही कहाँ ? दो महापराक्रमी वीरों के बीच से बाराह का बचकर जाना असम्भव था। बस दोनों भाइयों ने एक साथ एक ही समय ठीक एक ही स्थान पर दो कठिन तीर बाराह की ओर ताक कर छोड़े एक तीर बाराह के मस्तक को पार कर गया। उस तीर की बेदना को जङ्गली सुअर सम्हाल न सका। उस तीर के आघात से



धरती पर लेट गया। हाय ! बुरी सायत में इस जङ्गली सूअर का आघात हुआ था। बस इसी लक्ष्य बेध पर दोनों भाइयों में खूब तर्क वितर्क होने लगा। दोनों आपस में इसी बात पर भगड़ने लगे कि मेरे तीर से बाराह मारा गया, अन्त में यह तर्क वितर्क बहुत बढ़ गया। उस समय प्रताप अपने घोड़े को चक्राकार फेर रहे थे। उनके हाथ में शानदार बर्छा चमक रहा था। दोनों भाइयों के हृदय की दबी हुई विद्वेशाग्नि भभक उठी दोनों एक दूसरे को ललकार कर द्वन्द्वयुद्ध करने को तैयार हो गये दोनों एक दूसरे को ललकार कर कहने लगे “खबरदार, पीछे मत हटना आओ अभी हम तुम फैसला करे कि किसके तीर से बाराह मारा गया है।” बस इस तरह से कहकर एक दूसरे के प्राणों के ग्राहक बन बैठे दोनों भाइयों का आपस में यह भगड़ा देखकर समस्त वीर मण्डली चकित और स्तम्भित हो गई वह यन्त्रमुग्ध साँप के समान वीर मण्डली चुप चाप दोनों भाइयों की ओर देखने लगी।

चारों ओर सन्नाटा छा गया, हाय ! अब कौन दोनों भाइयों का भगड़ा मिटावे ? कौन दोनों भाइयों के अशान्त महासागर के समान हृदयों को शान्त करे। हाय ! अब मेवाड़ का सर्व-नाश उपस्थित हुआ। इस तरह से सभी वीरों के हृदय कांपने लगे, सभी अपने अपने इष्ट देवों से इस भगड़े के शान्त हो जाने की प्रार्थना करने लगे। पर प्रताप और शक अपने अपने सङ्कल्प से विचलित नहीं हुये। वे एक दूसरे के प्राणों के ग्राहक बने हुये थे। वे अपने विचारों पर अटल पर्वत के समान डटे हुए थे। वे अपनी अपनी धुन में लगे हुए थे। परन्तु जब सारी वीर मण्डली मन्त्र मुग्ध साँप के समान चुपचाप खड़ी हुई थी। जब प्रताप और शक भी भागी-भले-बुरे का विचार न करके एक दूसरे के प्राणों के



लेने की तैयारी कर रहे थे। तब प्रताप और शक्त की रक्षा के लिये कौन आगे आया ? पाठक ! उसी ब्राह्मण जाति की एक सन्तान जिसको बाबू लोग इस देश को चौपट करने-वाली जाति कहते हैं—अगुआ हुआ वह राज्य कुल पुरोहित-ब्राह्मण था। वह प्रताप और शक्त के इस भयानक युद्ध को मिटाने के लिये बीर मण्डली में से अगुआ बना। उसका कोमल हृदय सहन नहीं कर सका कि उसके होते हुये मेवाड़ का सर्वनाश हो जाय। वह दोनों भाइयों के बीच में खड़ा होगया और कहने लगा:—हे महाराणा जी ! हे राजकुमार ! शान्त हो, इस व्यर्थ के भगड़े में कुछ नहीं रक्खा है। पर किसी ने उसकी बात नहीं सुनी, दोनों मस्त हाथी के समान एक दूसरे पर भाला चलाने लगे। इस भयङ्कर दृश्य को देखकर राजपुरोहित ब्राह्मण ने फिर उच्चस्वर से महाराणा प्रतापसिंह को सम्बोधन करके कहा:—दुहाई, महाराणा जी अरे भाई ज़रा तो धीरज धरो। थोड़ी देर ठहरो तो सही, मेरी थोड़ी सी बिनती तो सुनो पर महाराणा ने कुलपुरोहित की इस बात पर ध्यान ही नहीं दिया। कुल पुरोहित ने देखा कि उसकी प्रार्थना का कुछ असर नहीं हुआ तब उसने शक्त सिंह को सम्बोधन करके कहा:—हे राजकुमार ! ज़रा ठहर जाओ ? तुम सरीखे वीर पुरुषों को आपस में इस तरह से लड़ना शोभा नहीं देता है। बड़े भाई से लड़ना क्या बुद्धिमत्ता है। पर वहाँ सुनता कौन था ? एक दूसरे पर चमकदार भाले चलाने लगे, कुल पुरोहित ने देखा कि उस की आवाज़ बहरे कानों पर पड़ी है। तब तो उसने दूसरा ही उपाय सोचा, वह दोनों भाइयों के बीच में जाकर खड़ा हो गया। वह पागल के समान मेघ गर्जना की भाँति उच्च स्वर से कहने लगा:—“झैर तुम दोनों भाइयों ने कहना न



माना, न सही। पर मैं अपने कर्त्तव्य से पीछे हटने वाला नहीं हूँ ! स्वर्गीय देव गण ! दोनों भाइयों की रक्षा करना। राजकुल को सकुशल रखना ! वाप्यारावल की राजगद्दी का गौरव बनाये रखना ! सिसोदिया वंश के राजमुकुट की मान मर्यादा रखना। इनके जीवित रहने से ही मेवाड़ की रक्षा होगी, मुग़लों के हाथों में से चित्तौड़ का उद्धार होगा। नहीं भ्रातृ विद्वेषाग्नि का परिणाम बड़ा ही शोचनीय होगा। अरे विद्वेषाग्नि बुझ, तू अब बुझे बिना नहीं रहेगी, तू रक्त की प्यासी है, तो मेवाड़ के राजकुमारों का रक्त न चूस कर ले इस ब्राह्मण का रक्त पी। बस यह कह कर ब्राह्मण ने अपने पेट में कटार घुसेड़ ली रक्त का फवारा छूटने लगा। उष्ण रक्त की धारा ने छन्द युद्ध करने वाले दोनों भाइयों को होली के लाल रङ्ग के समान रङ्ग दिया।

अरे ! यह क्या !! कुलपुरोहित ने हमारे ही लिये तो अपने प्यारे कोमल प्राणों का विसर्जन किया। अब दोनों भाई अपने भाले थाम थाम कर पश्चात्ताप करने लगे। दोनों को अपनी भूल ज्ञात हुई। साँप के काटे के समान दोनों ही धीरे गम्भीर स्थिर खड़े हो गये। दोनों के हृदय में अशान्त महासागर के समान जो क्रोध उठ रहा था, वह शान्त हो गया। दोनों को अपनी अपनी करनी पर पछतावा होने लगा, पर जो हो चुका, उसके दूर करने के लिये उनके हाथ में कोई उपाय न था।

यथा समय प्रतापसिंह ने कुल देवता का अन्त्येष्टी संस्कार कराया, उनके वंश में लोगों को यथेष्ट भूमिवृत्ति नियत कर दी। कहते हैं, आज तक ब्राह्मण के वंशधर राजवृत्ति पाते चले आते हैं। इसके पश्चात् प्रतापसिंह ने अपने सहोदर शकसिंह को अपने राज्य से निकल जाने की आज्ञा दी। शक्त ने



अपने बड़े भाई की आज्ञा को शिरोधार्य किया। वे तत्काल अपनी जन्मभूमि को छोड़ कर चल तो दिये, पर उनके हृदय का क्रोध शान्त नहीं हुआ। उनको अपने बड़े भाई से इस अपमान का बदला लेने की धुनि सवार हुई। बदला लेने की नियत से उन्होंने मेवाड़ के सदैव के बैरी मुग़ल सम्राट अकबर की शरण ली।

---



# हिंदी पुरे चंदे

भीष्म प्रतिज्ञा और सर्व साहुति

❧ “क्वचिद्भूमौ शैय्या क्वचिदपि च पर्यङ्कशयन  
क्वचिच्छाकाहारी क्वचिदपि च शाल्योदनरुचि  
क्वचित्कन्याधारो क्वचिदपि विन्निवाम्बरधरो  
मनस्वीकार्यार्थी गणयति न दुःखं न च सुखम्”

प्राताप मेवाड़ के राजसिंहासन पर सुशोभित हुये, विशाल मेवाड़ के स्वामी हुये, अगणित नरनारियों के दुःख सुख का भार उनके हाथ में आया पर प्रताप के पास उस समय राज योग्य कोई सामग्री न थी। धनबल, जनबल उस समय मेवाड़ में कुछ भी नहीं था। स्वर्ग तुल्य मेवाड़ उस समय श्मशान भूमि बनती हुई थी। उस समय मेवाड़ जनशून्य था। मेवाड़ की राजधानी चित्तौड़—मुग़लों के हाथ में थी, मेवाड़ भूमि में चारों ओर उस समय अन्धकार छा रहा था। राजपूत वीरों के

---

❧ कभी पृथ्वी पर सो रहते हैं कभी उत्तम पलङ्क पर शयन करते हैं।  
कभी साग पात खाकर रह जाते हैं, और कभी चावल आदि का उत्तम भोजन  
करते हैं कभी गूदड़ी ओढ़ते हैं और कभी अच्छे वस्त्र पहिनते हैं कर्मार्थी  
अर्थात् काम करने वाले मनुष्य कभी दुःख सुख का अनुमान नहीं करते हैं।

“भूमि शय्या कहं पलंग पे शाकहार कहं मिष्ट,  
कहं कंथा सिर पांव कहं अर्थी सुख दुख दृष्ट” —केसव ।



हृदय में से आशा की ज्योति बुझ चुकी थी। निराशा रूपी महासागर में राजपूतगण गोते खा रहे थे, केवल मेवाड़ में ही नहीं चारों ओर राजस्थान में से प्रतापसिंह को कहीं से भी सहायता की कुछ आशा नहीं थी। राजपूत वीर अपनी स्वाभाविक वीरता को भूल कर मुगल दरबार के क्रीतदास बन चुके थे। उस समय चित्तौड़ की कैसी दशा थी इसका अनुमान पाठक केवल इसी से कर लें कि चारण, भाटों ने उस समय चित्तौड़ की उपमा विधवा स्त्री से दी है।

महाराणा प्रताप ऐसे ही राज के स्वामी हुये, उनके पास धन बल, जन बल कुछ न था परन्तु सबसे बढ कर हृदय का उत्साह था। वे जानते थे, जैसा उनका हृदय है वैसी राजपूताने की, मेवाड़ की परिस्थिति नहीं है। परन्तु वीरवर प्रताप के हृदय पर बालक प्रताप रहते हुये जो संस्कार जम गये थे वे कभी दूर न हुये \* अपने यहां के स्वदेशी चारण भाटों के मुख से अपने पूर्वजों के पूर्व गौरव का वृत्तान्त सुनते २ प्रताप के हृदय में चित्तौड़ उद्धार का उत्साह दूना होगया। यद्यपि अकबर की नीतिनिपुणता से समस्त राजपूताना अपनी मान मर्यादा पर लात मार कर पराधीनता की जञ्जीर में जकड़ा हुआ था। जो राजपूत किसी समय मेवाड़ की छाया तले में रहते थे उनमें से आधेकांश अकबर के बिना मोल के चरे बन गये। जो राजपूतगण एक समय चित्तौड़ की शिक्षा के लिये अपना खून बहाते थे वे ही अकबर की नीति परायणता

❀ वास्तव में दुर्बल हृदयों को बलवान करने के लिये महापुरुषों के जीवन चरित और वृत्तान्त से बढ़कर और कोई उपाय नहीं है। महाराज शिवा जी के हृदय में भी स्वदेश भक्ति रामायण और महाभारत की कथाओं से हुई।



के कारण चित्तौड़ की, मेवाड़ की, स्वधीनता को मिटाने के लिये तैयार हो रहे थे। जो राजपूत एक दिन मेवाड़ाधिपति के पसीने की जगह अपना खून बहना अपना परम सौभाग्य समझते थे वे ही अकबर की नीति पाश में फँसकर महाराणा के खून के गाहक बन बैठे थे। मारवाड़ के उदयसिंह अकबर के गुलाम बन चुके थे। जयपुर के मानसिंह अकबर के सेनापति थे उन्होंने अपना हृदय तक अकबर को बेच दिया। बुंदी के हाड़ा जो महाराणा के परम मित्र थे समय समय पर महाराणा को सहायता देते रहते थे वे भी अकबर के हाथ की कठपुतली बन चुके थे। कहने का सारांश यह है कि उस समय राजपूतों के हृदयों से स्वदेश और स्वजातीयता का भाव एक दम दूर हो चुका था। राजपूत, राजपूत का खून घूसना चाहता था यहां तक कि प्रताप के भाई सागर जी और शक्तसिंह भी भाई चारे और जननी जन्मभूमि के नाते को

\* सागर जी भी प्रतापसिंह के दूमातृज भाई थे। इन के सगे भाई जगमल को सिरौही के राव सुखतान ने मारवाला था परन्तु इसका बदला प्रतापसिंह ने कुछ न किया क्योंकि राव सुखतान राणा का दामाद था। इसी से बिगड़ कर सागर जी अकबर से जा मिले थे। अकबर ने उन्हें राणा की पदवी और चित्तौड़ दिया। कुछ इतिहास लेखकों का मत है कि जब जहांगीर के समय में प्रतापसिंह के पुत्र अमरसिंह की सन्धि हुई थी तब जहांगीर ने उनसे राणा की पदवी और चित्तौड़ छीन कर अमरसिंह की दे दिया था। कुछ इतिहास लेखक कहते हैं कि सागर जी को अपनी करनी पर बहुत परचासाप हुआ था इस लिये वह अपने भतिजे अमरसिंह को चित्तौड़ देकर चले गये थे। जहांगीर ने उन्हें राणा की उपाधि दी थी सागर जी ने अजमेर में खास उपया समाकर बाराह जी का मन्दिर बनवाया था। उसे भी जहांगीर ने तुड़वा डाला था। इस कारण अथवा अन्य किसी प्रकार से जहांगीर द्वारा तिरस्कृत होने पर दरबार में अपनी क्षाती पर अस्मादात करके आत्मघात किया। सागर जी के एक पुत्र सुखजानी से



भूलकर अकबर की ओर जा मिले थे। पर इन सब बातों से प्रतापसिंह निराश और निरुत्साहित नहीं हुये। राजपूतों की यह दुर्दशा देख कर वे दुःखित होते, पर अपने भाइयों की ऐसी स्थिति देखकर वे और भी दुःखित होते थे। परन्तु इन सब अड़चलों के आ जाने पर भी वे व्रत से डिगे नहीं उन्होंने अपने व्रत को पूरा करने के लिये कठिन भीष्म प्रतिज्ञा धारण की।

संसार के बहुत से देशों में अपनी जन्मभूमि के उद्धार करने के लिये अनेक व्यक्तियों ने कठोर प्रतिज्ञाएं धारण की हैं। परन्तु प्रताप की भांति बिरले ही लोगों ने देशोद्धार का कठिन व्रत ग्रहण किया होगा। जानते हो, प्रताप का कठोर व्रत क्या था? अरे! दुबल हृदय उस कठोर व्रत की कल्पना भी नहीं कर सकता है। प्रताप की उस असाधारण प्रतिज्ञा, भीष्म प्रतिज्ञा की बात सुनते ही, रोंगटे खड़े होजाते हैं, आंखों में से पानी मेह की झड़ों के समान गिरने लगता है। अरे बिलासिता के प्रेमियों और दासों! तुम भोगविलास में पड़े हुए देशोद्धार की डींग हांकते हो। तुम अपने कान के पर्दे खोल कर उस राजपुत्र की, उस नरनाथ की प्रतिज्ञा सुनो, केवल सुन कर हो चुप मत हो जाओ, अपने हृदय के कपाटों को खोलकर उस प्रतिज्ञा को धारण करो। तब देखो तो

हुआ था, टाड साहब ने इसका नाम महावत ख लिखा है। किसी किसी इतिहास लेखक का मत है कि सागर जी के पुत्र ने मुसलमानी धर्म ग्रहण करके अपना नाम महावत ख रक्खा था। कोई कोई इतिहास लेखक कहते हैं कि महावत ख सागर जी की मुसलमानी जी का बेटा नहीं था वह काबुल से आया था पहिला नाम उस का जमाना बेग था। यह नाम जहांगीर ने रक्खा था। जो कुछ हो जहांगीर के समय में महावत ख जैसा योधा और सेनापति था वैसा कोई नहीं था। कम्हार का दुर्गा सागर जी के अधिकार में था—बेसम।



सही कि प्रताप की प्रतिज्ञा कैसी थी ? वह बज्र से और पत्थर से भी कड़ी थी या नहीं । परन्तु नहीं, तुम लोगों को प्रताप की प्रतिज्ञा पर ध्यान देने का समय ही कहाँ है ? तुम्हारे पाषाण हृदय पर प्रताप की वह प्रतिज्ञा अपना प्रभाव कैसे जमा सकती है ? ।

जानते हो कि जननी से बढ़कर जन्मभूमि का सिद्धान्त प्रचलित है पर कितने लोगों ने अपने व्यावहारिक जीवन — “जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी” — इस वाक्य को कार्य में परिणत करके दिखलाया है । प्रताप इस वाक्य को केवल अपनी वाणी से रट कर ही शान्त नहीं हुए थे । उन्होंने अपने इस वाक्य को कार्य में परिणत करके दिखलाया था । प्रताप सच्चे क्रियाशील थे, उनके हृदय में अपनी जन्मभूमि की दशा पर शोक सागर उमड़ रहा था । जननी की मृत्यु पर बहुत आदमियों को शोक मनाते देखा है परन्तु प्रताप ने अपनी जन्मभूमि के लिये जो शोक किया था वह उनकी इस प्रतिज्ञा से ही प्रकट होता है कि जब तक चित्तौड़ उद्धार न होगा तब तक हम और हमारे वंशधर बाल नहीं बनवायेंगे सोने चांदी के पात्रों में भोजन नहीं करेंगे फलजु पर कोमल शय्या पर शयन नहीं करेंगे इस प्रतिज्ञा के अनुसार कार्य किया गया । सभी सोने चांदी के वर्तन फोड़े गये सुख की सामग्री नष्ट की गई, राज परिवार ने कोमल फलजु की शय्या परित्याग करके तृण की, घास की, शय्या ग्रहण की । स्वदेश भक्त प्रताप केवल इतना ही कर के शान्त नहीं हुये । उन्होंने एक ऐसा उपाय किया जिससे यह शोक-घट मैवाड़ के सामने सदैव के लिये रह जावे । चित्तौड़ की

❀ भारत के दुर्भाग्य से चित्तौड़की वह पूर्व गौरव फिर प्राप्त नहीं हुआ ।



स्वाधीनता नष्ट होने से पहले चित्तौड़ के डड्डे (नगाड़े) सेना के सामने रहते थे। परन्तु जन्मभूमि के उद्धार करने का व्रत स्मरण कराने के लिये बीरवर प्रताप ने आज्ञा दी कि “यह नगाड़े मेवाड़ की सेना के आगे न बजकर पीछे बजा करें। प्रताप ने कठोर प्रतिज्ञा की कि प्राण रहते मेवाड़ का गौरव नष्ट नहीं होने देंगे, जन्मभूमि की मान मर्यादा की रक्षा के लिये कुछ बचा नहीं रखेंगे, माता के दूध पर कभी नहीं आंच आने देंगे।” बस इस भांति प्रताप ने कठोर देशोद्धार का कठिन व्रत उठाया जिस प्रकार माता के परलोकवास करने से उसकी वियोग वेदना में शोकाकुल होकर पुत्र कुछ दिनों के लिये सब सुख सामग्रियों का परित्याग कर देता है। वैसे ही प्रताप ने जन्मभूमि के शोक में सब सुख चैन पर लात मार दी।

राजर्षि प्रताप केवल स्वदेश के लिये स्वयं ही संन्यासी नहीं हुये किन्तु उन्होंने समस्त देशों को संन्यासी बना डाला उन्होंने आज्ञा दी “समस्त प्रजा राज्य को छोड़कर पहाड़ों पर रहे। राज में कोई महोत्सवादि न हो। सब घर जला दिये जायें वहाँ कोई वाणिज्य कृषि आदि करने न पावे। कोई भी ऐसी वस्तु न रहे जिससे मुसलमान बैरियों का आकर्षण होने पावे। जो कोई राज-आज्ञा भङ्ग करेगा उसे प्राण दण्ड होगा।” ऐसी आज्ञा बीरवर प्रताप ने अपने राज्य में प्रचलित करा दी। हँसने वालो! भले ही हँसो और कहो कि प्रताप की यह पागलपन की प्रतिज्ञा थी। ‘संसार में किसी को किसी कार्य करने की सच्ची लाली लगी हुई होती है उसी को पागल

जिसके कारण मेवाड़ के राखी आज तक रूपान्तर में इस आज्ञा का वासन करते आते हैं। शयन करने समय शय्या के नीचे घास रख दी जाती है, सोने चांदी के बर्तनों में चूल्हों पर भोजन रक्खा जाता है। अब भी चित्तौड़ की सेना का रक्त रङ्ग पीछे रक्खा जाता है—खेलक।



कहते हैं। प्रेम में सभी पागल हो जाते हैं, प्रेम में मनुष्य अपना सर्वस्व खो बैठता है। वह प्रेम चाहे जैसा क्यों न हो ? मज्जन् ने लैला के प्रेम में अपने प्राण तक गंवा दिये थे। प्रताप का प्रेम लैला मज्जन् का सा न था। उनका प्रेम देश प्रेम योगी जनों की भांति था जो ईश्वरीय प्रेम में सर्वस्व त्यागकर एकान्त सेवन करते हैं। उन्होंने अपने राष्ट्रीय यज्ञ को पूर्ण करने के लिये सर्वस्व स्वाहा कर दिया। अपनी प्रजा के हृदय में देश की शोचनीय स्थिति को बनाये रखने और देश की शोचनीय दशा सुधारने के लिये उन्होंने इस कठोर व्रत का अवलम्बन किया था।

प्रजा ने सहर्ष अपने नरनाथ की इस आज्ञा के सामने मस्तक झुकाया। बड़े सरदारों से लेकर साधारण श्रेणी की प्रजा तक प्रताप के इस कठिन व्रत में सहायता करने को उद्यत हुई। अपनी प्रजावर्ग की सहायता से प्रताप ने देशोद्धार का शुभ अनुष्ठान आरम्भ किया।



# (सावित्री प्ररच्छेद)

## राजाज्ञा भङ्ग का दण्ड

“अहो, जिनको विधि सब जीव सों बढि दीनों जग काज ॥  
अरे, दान सलिल वारे सदा जे जीतहिं गजराज ॥  
अहो, भुक्त्यो न जिनको मान ते नृपवर जग सिरताज ।  
अरे सहहिं न आज्ञा भङ्ग जिमि दन्त पात मृगराज ॥  
अरे, केवल बहु गहिना पहिरि राजा होइ न कोय ।  
अहो, जाकी नहिं आज्ञा टरै सो नृप तुम सम होय ॥

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

महाराणा प्रताप केवल देशोद्धार के कठोर व्रत पालन करने की आज्ञा देकर ही निश्चिन्त नहीं हुए । वे घोड़े पर सवार होकर अकेले अपने राज्य में घूमते थे और छिप छिप कर देखते थे कि उनकी आज्ञा पालन होती है या नहीं । जो कोई उनकी आज्ञा भङ्ग करता था वह पकड़ा जाता था और कठोर दण्ड पाता था । थोड़े ही दिनों में मेवाड़ के अधिकांश स्थान उजड़े हुये दिखाई देने लगे । यहां तक कि राजपथों पर ठसाठस भीड़ लगी रहती थी, जिन पर रास्ता मिलना कठिन हो जाता था, तिल रखने को भी स्थान नहीं मिलता था, वे सुनसान दिखलायी पड़ते थे । जिन बड़ी बड़ी अट्टालिकाओं में कोलाहल के कारण एक शब्द भी सुनना मुश्किल हो जाता था, वे उजड़ी हुई पड़ी थीं उनमें पशु पक्षियों ने अपने घोंसले बना लिये थे । जिन राज



महलों में रोशनी के कारण आंखें चका चौंध हो जाती थीं उनमें अन्धेरा छाया हुआ था। जिन स्थानों में हाथियों की चिग्घाड़ और घोड़ों की हिनहिनाहट रात्रि दिन सुनाई पड़ती थी उन स्थानों को जङ्गली पशुओं ने अपना गढ़ बना लिया था। जिन स्थानों में सुन्दर पुष्प बाटिकायें बनी हुई थीं जहां पुष्पों की सुगन्धि से मस्तक में तरावट हो जाती थी अब वे स्थान कटीले बन हो गये थे। फूलों के स्थान में बहुत से कांटे उग आये थे। जिन खेतों में हरी भरी फसल लहराती थी वहां लम्बी लम्बी घास उग आई थी। बहुत से रास्ते जङ्गली कटीले वृक्षों और झाड़ियों से रुक गये थे। जिन बड़े २ महलों में अप्सराओं सी रूपवती कमलनयनी सुन्दरियां रहती थीं वहां अब भयङ्कर जङ्गली जन्तुओं का बास था। कहां तक कहें स्वर्ग तुल्य मेवाड़ की श्मशान भूमि से भी गई बीती दशा हो गई थी।

एक दिन प्रताप अपने साथियों के साथ बनास नदी के किनारे अजतल्ला नामक स्थान में घूम रहे थे। इतने में क्या देखते हैं कि एक गड़ेरिया छिपकर अपनी भेड़ बनास नदी के किनारे उगी हुई बड़ी बड़ी घास पर चराने के लिये लाया था कि वैद्य संयोग से राणा जी की उस पर निगाह हुई। उस बेचारे को क्या मालूम था कि महाराणा खोजते खोजते यहां तक आ जायेंगे वह समझे हुये था कि इस निर्जन स्थान में उसे कोई देख नहीं सकेगा। परन्तु नहीं उसका अनुमान मिथ्या निकला। महाराणा यहां पहुंच ही तो गये। महाराणा को सामने देखते ही बेचारे गड़ेरिये के होश फाट्ट हो गये, महाराणा ने उसे आवां भड़ के लिये कठोर दण्ड की आज्ञा दी और गड़ेरिया को प्राण दण्ड मिला। उसकी लाश एक पेड़ पर लटका दी गई जिससे दूसरे लोगों को आवां



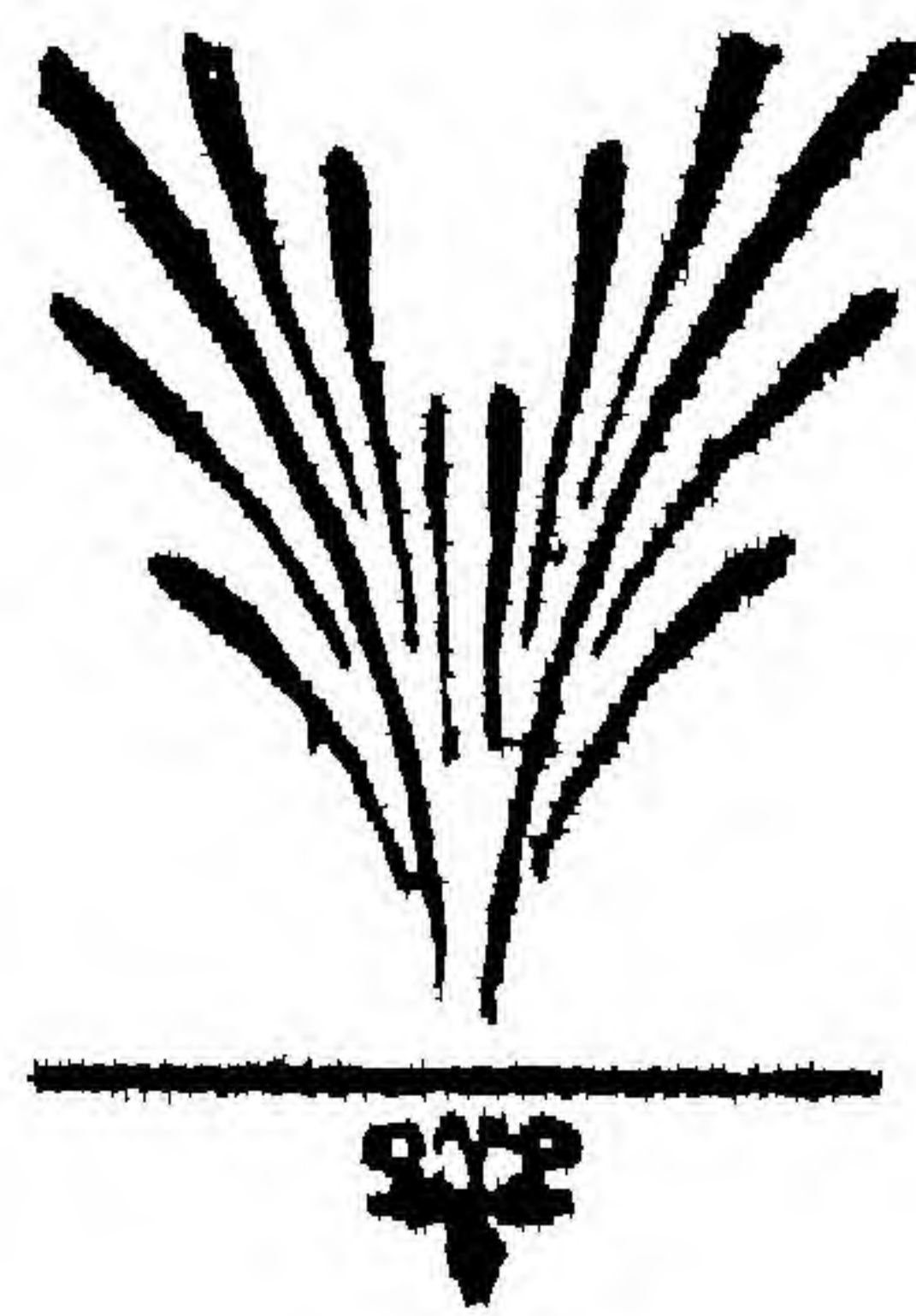
भङ्ग करने की शिक्षा मिलती रहे। बस इस तरह से उस श्यामल सस्यपूर्ण स्वाभाविक सुन्दरता की खानि समतल मेवाड़ की अवस्था उस अबला को समान हो गयी जो बिधवा होते ही अपना सब श्रृङ्गार गहने कपड़े उतार, मलिन, हीन भिखारिणी के समान हो जाती है। शस्यशालिनी मेवाड़ भूमि मरुस्थली बन गई।

मेवाड़ को उजाड़ कर राजर्षि प्रतापसिंह ने अपनी राजधानी कुम्भलमेर में बनाई तथा गोगूँदा आदि पहाड़ी किलों को दूढ़ किया। मुसलमानों से लड़ने की तैयारी करने लगे। परन्तु उस समय उनके परिवार की दशा और भी भयानक थी कि जो सदा राजोचित भोग विलास करते आये थे वे दीन भाव से भिखारी के समान कन्दराओं में गुफाओं में भटक रहे थे। राज महिषी को अपने हाथ से रसोई बनाकर पेड़ों के नीचे घास के बिछोने पर सोना पड़ता था। इस भांति प्रताप का राज परिवार भी अपना समय बिताने लगा।

प्रताप ने जिस कुम्भलमेर में अपनी सेना इकट्ठी की थी वह मेवाड़ के पहाड़ी प्रदेश के बीच में है। उस प्रदेश में जाने के लिये एक दो से अधिक पहाड़ी रास्ता नहीं है। मुगल सेना उस प्रदेश से बाहर इकट्ठी हो रही थी। पहाड़ी प्रदेश का उसे कुछ भी पता न था। मेवाड़ के उजड़ जाने से बादशाही सेना को खाने पीने को सामग्री का अभाव था। इस लिये बादशाही सेना का भोजन की यथेष्ट सामग्री और सैन्यबल बिना उस प्रदेश में घुसना असम्भव था। राजपूत वीर अपने प्रदेश के सभी रास्ते घाटी नाले जानते थे। वे लोग बीच बीच में मुगल सेना पर आक्रमण करके उसके छुके छुड़ा देते थे। उस समय उत्तर भारत से वाणिज्य की जो चीजें यूरोप को जाती थीं, वह अरवली के पास होकर सुरत



आने पर जहाज़ पर लादी जाती थीं। राजपूत लोग इन वस्तुओं को लूटने लगे। इस तरह से धीरे धीरे उस रास्ते से यात्रियों को चलना भी मुश्किल हो गया था। मुग़ल सेना धीरे धीरे बढ़ रही थी, बीर प्रताप उन्हें रोकने के लिये उत्तर भाग की पहाड़ी गुफ़ा की ओर बढ़ रहे थे इस स्थान का नाम हल्दीघाटी है।





# हिठवा पारखे

## अकबर की कपट लीला

- “मधुर वचन तें जात मिट, उत्तम जन अभिमान ।  
● तनक शीत जल सां मिटै, जैसे दूध उफान ॥”—वृन्द ॥  
“जाकी धन धरती हरी ताहि न लीजे संग ।  
जो संग राखे ही बनै तो करि राखु अपंग ॥  
तौ करि राखु अपंग फेरि फरकै सुन कीजै ।  
कपट रूप बतराय ताहि को मन हरि लीजै ॥

—गिरधर कविराय

आइये ! पाठक !! आइये !!! थोड़ी देर परम पुनीत प्रताप—चरित की आलोचना न करके उनके प्रतिद्वन्द्वी अकबर को नीति कुशलता पर भी विचार करें । हम लोगों को इतिहास में पढ़ाया गया है कि अकबर हिन्दुओं के बड़े मित्र थे । हिन्दुओं से बड़ा प्रेम करते थे हिन्दुओं के साथ अकबर का व्यवहार बहुत ही अच्छा था । कोई कोई इतिहास लेखक अकबर के गुणों पर फूल कर कुप्पा हो गये हैं । बहुत से लोगों ने “दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा”—यह उपाधि अकबर को देकर अपनी उदारता की हद्द कर दी है । स्कूलों में कोमल मति के बालकों को पढ़ाया जाता है कि अकबर से बढ़कर मुसलमानों में कोई बादशाह नहीं हुआ । हिन्दू उससे प्रसन्न रहते थे और मुसलमान सदा उससे नाराज रहते थे । वह मुसलमानों के नाराजी की कुछ भी परवाह



न करके सदैव हिन्दुओं का पक्ष करता रहा। आज कल के मदरसों में हमारे जिन पाठकों ने इतिहास का अध्ययन किया है अथवा जो कोमल मति के बालक और नवयुवक पढ़ रहे हैं, वे हमारे उपर्युक्त कथन से सहमत होंगे कि वास्तव में स्कूलों में पढ़ाये जाने वाले इतिहासों में बादशाह अकबर की ऐसी ही प्रशंसा—बल्कि इस से भी बढ़कर लिखी हुई है। कवि की कल्पना नहीं है लेखक का वाक्य आडम्बर शब्द रचना भी नहीं है। वस्तुतः इतिहास में अकबर को हिन्दुओं का मित्र ही कह कर सम्बोधन किया गया है। कहा गया है कि अकबर के दरबार में गंगाजल पिया जाता था, उसने अपने राज्य में गो बध की मनाई करा दी थी और साल भर में छः महीने से ऊपर अकबर मांस भक्षण भी नहीं करता था। हिन्दुओं की तरह अपना लिवास रखता था। तब कहो क्यों न अकबर को हिन्दुओं का मित्र और पक्षपाती कहा जाय ! और अकबर के प्रपौत्र—औरङ्गजेब को जानते हो न ! वह कैसा था ? वह हिन्दुओं का बादशाह विद्वेषी था, उसने हिन्दुओं के मन्दिर तोड़े, बहुत से हिन्दुओं को मुसलमान बनाया। इतिहास कहता है कि वह हिन्दुओं से घृणा करता था। उसने कितनी ही बार हिन्दुओं को कत्ल कराया था। कहो तो सही अकबर और औरङ्गजेब के आचरणों से तुम लोगों ने क्या परिणाम निकाला है और क्या समझते हो ? अरे ! तुम क्या उस समय के हिन्दू भी, राजपूत भी बादशाह अकबर की हलाहल विष भरी नीति को नहीं समझें थे। यदि राजपूत वीर गण अकबर की इस जहरीली नीति को समझ गये होते तो क्या आज हमारी मुझा मरता भारत के पैर पराधीन की कठोर बेड़ी



से जकड़े जाते। समझते हो न! अकबर का इस आडम्बर में मूल सिद्धान्त क्या था? अरे! अकबर की कुटिल नीति चाणक्य पण्डित और जर्मनी के विस्मार्क से भी कठोर थी। चाणक्य ने केवल नन्द वंश का नाश करके चन्द्रगुप्त का राज्य बसाया था। विस्मार्क ने फ्रांस को नीचा दिखा कर तथा जर्मनी के भीतरी विप्लवों को शान्त करके—जर्मन राज्य की पुनः स्थापना की थी। पर अकबर की नीति का पता लगाना टेढ़ी खीर है। अकबर का हिन्दूपन का ढोंग क्या था? हम साफ़ और खुले शब्दों में कहेंगे कि वह अकबर की कपट नीति थी और कपट नीति भी कैसी? —विषस्य विषमौषधम्, अर्थात् विष की औषधि विष है। ज़हर से ही ज़हर शान्त होता है। लोहा लोहे से ही काटा जाता है। वस, अकबर की यही नीति थी कि हिन्दू जाति का हिन्दुओं द्वारा ही नाश किया जा सकता है। राजपूत वीर राजपूतों द्वारा ही वश में किये जा सकते हैं। यही तो अकबर का हिन्दूपन था। इस लिये वह हिन्दुओं से प्रेम करता था। यदि अकबर Divide and rule की अर्थात् भेदभाव और शासन करने की नीति का प्रचार न करता तो नहीं कह सकते कि सब से बड़े मुग़ल सम्राट नहीं नहीं मुसलमान सम्राट का राज्य उस समय अटल रहता या नहीं। चतुर चूड़ामणि अकबर देख चुका था कि उसके दादा पितामह बाबर को राणा सांगा की अधीनता में राजपूतों से कैसा कैसा सामना करना पड़ता था। अकबर जानता था कि यहां वालों के कारण उसके बाप हुमायूँ का दिल्ली का तख्त तक छेड़ना पड़ा था। इस लिये दूरदर्शी अकबर ने सोचा कि पांच में गड़े हुए कांटे को हाथ के कांटे से निकालते हैं, वैसे ही अन्दर से अपने वश में किये हुए शत्रु से शत्रु को नाश करना चाहिये। मिश्री देने से ही किसी का



प्राण नाश होता हो वहां विष देने की ज़रूरत ही क्या है ? बस, अकबर का यही सिद्धान्त था, सिद्धान्त क्या था ? कपट जाल था । बस, उसके इस कपट जाल में भोले राजपूत फँस गये । जिस तरह से मछली थोड़े से आटे के लालच में आकर अपने प्राण घातक की बंसी में फँस जाती है, अथवा यों कहिये थोड़ी सी मधुर तान की लालच में दौड़ता हुआ हरिण, ठहर कर शिकारी का निशाना बन जाता है, वही दशा इस नीति के कारण राजपूत जाति के हुई ।

शत्रु की अपेक्षा मित्रों से भारतवर्ष का विशेषतः राजपूताने का सत्यानाश हुआ है । यह सच है कि औरङ्गज़ेब हिन्दुओं का विद्वेषी था, परन्तु हिन्दू भी उसके विद्वेष से चिड़कर उससे मुकाबिला करने को तय्यार हुये थे, औरङ्गज़ेब के विद्वेष भाव ने हिन्दुओं को अपने भूले हुये स्वरूप का ज्ञान कराया । औरङ्गज़ेब के विद्वेष भाव के कारण ही दिल्ली की बादशाही खाक में मिल गई । पर अकबर का हिन्दुओं की मित्रता के कारण राज्य जम गया । इस समय जो मुसलमान अकबर की कुटिल नीति के मर्म को न समझ कर उस पर नाक भों सिकोते थे, चिड़ते थे, वे भूलते थे । अकबर ने हिन्दू आचरण को ग्रहण करके, राजपूतों के विशुद्ध रक्त तक को कलङ्कित करने की चेष्टा की थी । औरङ्गज़ेब निष्ठुर शासक हो सकता है, माना उसने हिन्दुओं पर बहुत से अत्याचार किये थे पर अकबर ने हिन्दुओं का विशेषतः राजपूतों का खून खटमल अथवा जुए की तरह से पीने की कोशिश की थी वैसे औरङ्गज़ेब ने नहीं किया \* औरङ्गज़ेब में हजार दोष

\* औरङ्गज़ेब और बादशाहों की तरह भोग विवासी न था । मरते समय उसने लिखा है कि टोपियाँ लीकर जो मैं बेचता था, उसका सादे चार



हों, पर वह अकबर के समान विलासी और इन्द्रिय-निरत न था। अकबर की तरह औरङ्गजेब न तो नाच गान पसन्द करता था और न अकबर की भाँति हिन्दुओं की स्त्रियों के सतीत्व-रत्न को हरण करना चाहता था। अकबर हिन्दुओं पर प्रीति दिखाते थे सही, परन्तु उनका भीतरी अभिप्राय हिन्दुओं को बलहीन, धर्महीन और जातिहीन करने का था और वह कैसे अपने इस मनोरथ को सफल करते थे, सो आगे पढ़ियेगा।

रूपया बाकी है, वही मेरे कफ़न में खर्च किया जावे और मैंने कुरान लिखकर ८०५) रूपया जमा किया है उसे फकीरों में बाँट देना। इससे मलूम होता है कि शिल्पकार्य और सहित्य-सेवा द्वारा औरङ्गजेब अपना निज का खर्च चलाता था। नासिरुद्दीन मुहम्मद—जो शमसुद्दीन अल तिमश का बेटा था, हिन्दुस्तान का बादशाह होने पर भी बड़े सादे स्वभाव का रहा। उसने सिर्फ अपनी एक ही शादी की, अपनी बेगम से ही खाना पकवाता था—कोई खौड़ी या मज़दूरिन उसके पास नहीं रहने देता था, जो ग़रीब मुहताजों के खाने में भाँसा है वही आप खाता था। साहित्य-सेवा करके अपना गुज़ारा करता था। एक दिन किताब नक़ल की और एक मुल्ला को दिखलाई, मुल्ला ने उसमें कुछ भूलें बतलाई जो उसके सामने तो उसके कहने के मुताबिक ठीक करदी पर पीछे फिर पहले की भाँति बना दिया। एक आदमी के पूछने पर कहा:—मैं जानता हूँ कि जो कुछ मैंने लिखा है, सही है, पर उसके सामने न करता तो उसका जी दुखता। लेखक



# नवां परिच्छेद

## “नौरोज़ा” और अबला का आत्मिक बल

धनि धनि भारत की छत्राणी ।  
वीर कन्या का वीर प्रसविनी वीरवधू जगजाणी ॥  
सती शिरोमणि धर्म धुरन्धरि बुधि बल धीरज खानी ।  
इनके जस की तिहुं लोक में अमल ध्वाजा फहरानी ॥

हरिश्चन्द्र

खरीदवार रमणी जहां, रमणी बेचनहार ।  
रमणीगण के रूप का, लगा अनूप बजार ॥

हमारे बहुत से पाठकों ने नौरोज़े के मेले का नाम सुना होगा । इस नौरोज़े के मेले के चलानेवाले, हिन्दुओं को लाड़ प्यार करनेवाले बादशाह अकबर ही थे । अकबर से पहले और उसके पीछे भी किसी की बुद्धि में “नौरोज़े” जैसे मेले के प्रचलित करने की नहीं समझ । इस नौरोज़े में होता क्या था ? अभी कुछ भी नहीं, होता क्या था—साफ़ ! बादशाह अपने राज्य की भीतरी अवस्था जानने के लिये नौरोज़े का मेला किया करते थे अकबर के लाड़ले कुलारे बज़ोर अब्दुलफ़ज़ल ऐसा ही कहते हैं । अब्दुलफ़ज़ल को हम कुछ दोष नहीं देते । ठीक ही है; ‘समर्थ को नहीं दोषगुसई’ यदि अकबर के समय में कोई दूसरा नौरोज़े के मेले का अकबर के समान ही आङ्गूर रचता तो अब्दुलफ़ज़ल इतने उदार हो जाते कि वे अपनी सारी पुस्तक में नौरोज़े का मेला करनेवाले को



लानत मलामत देते । स्वयं अकबर ही ऐसे मेले करने वालों की खाल ही उधड़वा डालते पर नहीं अकबर और अब्बुलफज़ल दोनों ही इस मेले में कोई बुराई नहीं समझते थे । अब्बुलफज़ल ने इस नौरोज़े के मेले को लेकर अकबर की खूब ही वकालत की है । अकबर को नौरोज़े के मेले से मुक्त करने के लिये उदार हृदय से स्याही खर्च की है । चतुर चूड़ामणि अब्बुलफज़ल ने नौरोज़े शब्द के अर्थ की खूब ही हत्या की है । भला कहीं सत्य भी छिपाये से छिप सकता है । अब्बुलफज़ल अकबर के माथे से बहुत कुछ कलङ्क हटाने की चैष्टा करने पर भी झूठ छिपाने में समर्थ नहीं हो सके हैं । अब्बुलफज़ल के शब्दों में ही सुनिये गा प्रति मास के बड़े बड़े त्यौहारों के बदले में इसी नौरोज़े के नौ दिन माने गये थे । नयी साल के नौ दिन नहीं थे । नौरोज़े, के नौ दिनों में सब मुसलमान आनन्द मनाते थे 'नौरोज़े' के नौ दिनों में से एक दिन बादशाह स्त्रियों के लिये मेला करते थे । स्त्रियों के इस मेले में बड़े बड़े सौदागरों की स्त्रियां अपने अपने यहां का माल बेचने लाती थीं बादशाह की बेगम शाहजादियां, अमीर उमराव, रईस, राजा लोग जो बादशाह अकबर के आश्रित में रहते थे उनकी स्त्रियां सभी अपनी ज़रूरत की चीजें खरीदती थीं इस तरह से नौरोज़े मीठा बाज़ार राजधानी दिल्ली के महलों में रूप की हाट लगती थी । और बादशाह अकबर क्या करते थे ? पक्षपाती और खुशामदी इतिहास लेखकों की कपाल क्रिया, क्योंकि अब्बुलफज़ल जैसे खुशामदी इतिहास लेखक कहते हैं कि अकबर अपने राज्य की भीतरी अवस्था जानने के लिये मेला करते थे । बाह क्या खूब अच्छा राज्य की भीतरी अवस्था जानने का उपाय सोचा । न मालूम अब्बुलफज़ल यह कहना क्यों भूल गये



कि बादशाह रुपसुधा का पान करते थे। बादशाह की आन्तरिक पाप बासना को जान नहीं सके बादशाह अकबर मूर्खों की आंख में धूल भोंककर छिपे छिपे कितनी मृगनयनियों का शिकार करते थे। इस नौरोज का नाम खुशरोज अर्थात् आनन्द का दिन भी था। इस दिन बादशाह अकबर अपनी इन्द्रियोपजनित पाप बासना को तृप्त करके आनन्द के महासागर में मग्न होते थे। न मालूम आज के दिन बादशाह ने कितनी ही ललनाओं के सतीत्व रुपी रत्न को छल बल कौशल से खरीद लिया था। कितनी ही अबोध ललनाएं लोभ लालच में आकर अपने सतीत्व को अकबर के हाथ बेच चुकी थीं बीकानेर के रामसिंह की स्त्री ने रत्न अलङ्कार के लालच में आकर अपने अमूल्य रत्न सतीत्व को अकबर के हाथ में समर्पण कर दिया। अकबर का नियम ही ऐसा था कि जो राजपूत उसके अधीन होता था, उसको अपनी बहू बेटी मीनाबाजार में बेजनी पड़ती थी। अकबर के अधीनस्थ राजाओं में केवल \* बूंदी के हाड़ा राजाओं ने अपनी बहू बेटियों को मीनाबाजार में नहीं बेजा था उनके संधिपत्र में साफ लिखा हुआ है कि बूंदी के राजा न कभी बादशाह को डोला देंगे और न उनकी बहू बेटियां नौरोज के

सच पूछिये तो उस समय हिन्दुओं में संगठनशक्ति के न होने के कारण ही बादशाह अकबर अपना विशाल साम्राज्य स्थापित करने में समर्थ हो सके थे। चित्तौड़ के वीरों के सम्मान ही बूंदी के हाड़ा वीरों के कारण अकबर के छक्के छूट गये थे। बूंदी के राव सुर्जनजी के समय में बूंदी राज्य की अकबर से संधि हुई थी। अकबर बूंदी राज्य से संधि करने के छिपे इतना छटपटा रहा था कि वह स्वयं बूंदी के दरबार में जयपुर के राजा भगवानदास और राजा मानसिंह के साथ मौकर के भेष में गया था। स. १६२४ विक्रमी में बूंदी राज्य से संधि हुई थी। देखो—Tod's Rajas-

thana के अ. १४—लेखक



मीना बाजार में जायंगी। बूंदी के राजवंश को छोड़कर अकबर अपने अधीन राजाओं के रक्त तक को नौरोजे के मेले की आड़ में अपवित्र कर रहा था। परन्तु सभी राजपूत ललनार्यें अपना आत्म विक्रय करने को तैयार नहीं होती थीं कि एक राजपूत ललना से अकबर को किस तरह से अपने पापिष्ठ विचार के लिये क्षमा प्रार्थना करनी पड़ी थी, उसकी बात सुनिये।

बीकानेर के राजकुमार पृथ्वीराज अकबर के यहां राज-नैतिक कैदी थे परन्तु कैदी होने पर भी उन्होंने अपने हृदय की स्वतन्त्रता नहीं बेची थी। पृथ्वीराज बड़े कवि थे निडर थे और पूरे देशभक्त थे। उनके विचारों के समान ही उन्हें धर्मपत्नी मिली थी। उनकी धर्मपत्नी महाराणा प्रतापसिंह की भतीजी और शक्तसिंह की पुत्री थी। उसे अपने सीसोदिया कुल का अभिमान था जैसी गुणवती थी वैसी ही रूपवती थी। राजस्थान भर में वह अद्वितीय सुन्दरी थी। एक दिन उस स्त्री को नौरोजे के मीनाबाजार में जाना पड़ा था। मीना बाजार में बादशाह अकबर छल भेष में स्त्रियों को ताड़ा करते थे। वे उस सुन्दरी को देखकर मोहित होगये। उन्होंने समझा कि अन्य स्त्रियों के समान वह भी अपना आत्मसमर्पण उनको कर देगी। परन्तु वहां तो बात ही दूसरी निकली, उनका पृथ्वीराज की स्त्री के संबंध में भ्रम था वह सीसोदिया कुल की बेटी थी उसका सतीत्व हरण करना खेल नहीं था उन्हें क्या मालूम था कि:—

आज मृगनयनी को अपने फन्दे में नहीं फंसाया, बल्कि सिंहनी के फन्दे में फंसे हैं। अकबर ने उस सती को लोभलालच से अपने वश में करना चाहा, परन्तु तेजस्विनी, वीर बाबा ने यह कुछ भी झुगाल न करके कि अकबर भारत का सम्राट है उसकी छाती पर चढ़ बैठी और कमर में से छुरा निकाल



कर कहा:—‘अरे ! नराधम !! पापिष्ट !! ईश्वर की शपथ खाओ कि फिर कभी राजपूत कुल कलङ्कित करने की चेष्टा नहीं करोगे । नहीं तो अभी तुमको इस छुरी से यमलोक लो पहुँचाती हूँ । कहावत है कि चोर के कभी पैर नहीं होते, अन्याय के कटीले वृक्ष और पर्वत के समान बड़े पापियों के कलेजे भी ज़रा से न्याय के पत्ते हिलने पर दहल जाते हैं । वो ही दशा बादशाह अकबर की हुई अकबर भारतवर्ष के लाख सम्राट भले ही रहे पर पृथ्वीराज की वीरबाला के साहस को देखकर उनका भी कलेजा दहल गया और बिना किसी संकोच के रानी के कथन के सामने मस्तक झुकाया । धन्य मातृभूमि है, जहाँ किसी समय ऐसी वीरललनाएं हुई थीं । आज इस गई बीती दशा में भी भारतमाता का ऐसी पुत्रियों के कारण ही मस्तक ऊंचा है परन्तु हाय ! आज ऐसी स्त्रियां होना तो दूर रहा, पुरुष भी नहीं हैं । अस्तु, पाठक ! जब राजपूत जाति अकबर की कुटिल नीति की इस बात में फँसकर अपनी वंश मर्यादा मान और प्रतिष्ठा तक भूल चुकी थी तब केवल राजस्थान के ध्रुवतादा प्रतापसिंह ने अकबर का मुकाबला करने की ठानी ।



# दशवां परिच्छेद

## मान का अपमान

“निज कुल की मरजाद लोभवस दूर बहाई ।  
जीवन भय जिन खोइ दई आपुनी बड़ाई ॥  
जिन जग सुख हितकरी जाति की जगत हँसाई ।  
लखि जिनको मुख वीर सबै सिर रहे नवाई ॥  
तिनके संग खानौ कहा मुख देखतहु पाप है ।  
जाइ सोस वरु धर्म हित यह सिसोदिया थाप है ॥”

श्रीराधाकृष्णदास

सर्वग्रासी अकबर ने एक एक करके सब देशी रजवाड़ों को हड़प लिया था, सभी उनके मंत्र बल से मुग्ध हो गये थे । आर्यजाति के एकमात्र आराधनीय रघुकुल कमल दिवाकर धर्म रक्षक, पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र जी ने जिस सूर्यकुल की शोभा बढ़ाई थी, उसी सूर्यकुल की सन्तान जयपुर नरेश अकबर के सब से पहले दास बने थे । जयपुर के राजा मानसिंह अकबर के दाहिने हाथ थे । कई मुसलमानी इतिहास लेखकों ने लिखा है कि जयपुर, जोधपुर आदि के राजा अकबर उस समय बावशाही सलतनत के खम्भे थे । वास्तव में यह ठीक ही है यदि राजपूतगण अकबर के साथ न होते तो कदापि अकबर निष्कण्टक राज्य न कर सकते । जिन राजपूत-नरेशों ने अकबर की वश्यता स्वीकार की थी उनमें से मुख्य राज्य में जयपुर नरेश—राजा मानसिंह का बड़ा स्थान था । कलवाओं के भाटों और चारणों ने राजा मानसिंह की कीर्ति में बड़ी बड़ी ओजस्विनी कविताएँ की



हैं। कहा जाता है कि अकबर का आधे से अधिक राज्य राजा मानसिंह द्वारा ही विजय किया हुआ था। चारणों की कविता में लिखा हुआ है कि पश्चिम में ईरान के पर्वत पेरो पामीशस तक और पूर्व में अराकान (ब्रह्मा) तक देश इस राजपूत राजा ने राजपूत सेना की सहायता से जीतकर अकबर के अधीन कर दिये थे। इस प्रकार राजा मानसिंह के सम्बन्ध में बहुत सी बातें चारणों और भाटों ने लिखी हैं। जो कुछ हो राजा मानसिंह ने अकबर के राज्य की उन्नति करने में कुछ कसर नहीं छोड़ी थी। मुगल साम्राज्य की उन्नति करने में राजा मानसिंह जाति द्रोह, देश द्रोह तक करने में नहीं हिचके। अकबर की दाहिनी भुजा इन्हीं राजा मानसिंह के कारण, राजस्थान के ध्रुवतारा हिन्दूपति मही महेन्द्र यादवार्य-कुल-कमल-दिवाकर महाराणा प्रतापसिंह को अनेक कष्ट सहन करने पड़े थे। प्रतापसिंह के साथ अकबर के युद्ध के कारण यही राजा मानसिंह हुए।

मानसिंह दक्षिण में शोलापुर को विजय करके दिल्ली जा रहे थे, राह में मानसिंह जी उनकी राजधानी कुम्भलगिर में आये। प्रतापसिंह हृदय से चाहे जो कुछ थे, परन्तु अपने सीसोदिया कुल के अनुसार उन्होंने राजा मानसिंह का खूब आदर सत्कार किया। स्वयं उदयसागर तक जाकर उनका स्वागत किया और बड़े आदर सत्कार के साथ उनकी अपने यहां ठहराया। उसी नव प्रतिष्ठित राजधानी में, उदयसागर के तट पर मानसिंह के भोजन का प्रबन्ध किया गया। एक ही राजा के अतिथि, दूसरे मुंह मँगे मेहमानी, तीसरे मेहमानी के चिरपशु सम्राट अकबर के प्रधान युद्ध मंत्री, तिसरे महाराणा की आकांक्षा, इन कारणों से भोजन का प्रबन्ध यथा सम्भव प्रबन्ध किया गया।



राणा प्रताप उस समय व्रतधारी थे सोने चांदी के बर्तनादि सभी उन्होंने छोड़ रखे थे । परन्तु उन्होंने मान सिंह के आतिथ्य सत्कार में किसी प्रकार की श्रुति नहीं की । अपने जेष्ठ पुत्र युवराज अमरसिंह को आतिथ्य का भार सौंपा । मानसिंह भी युवराज अमरसिंह की अभ्यर्थना से सन्तुष्ट हुये ।

संगमरमर पाषाण निर्मिति सुन्दर सरोवर के तीर भोजन का प्रबन्ध किया गया, भोजन के लिये स्थान सजाया गया । भोजन की सामग्री धीरे धीरे आने लगी, ठीक समय पर राजा मानसिंह को भोजन के लिये बुलावा भेजा । मानसिंह आये और भोजन करने के लिये आसन पर बैठ गये, भोजन करने से पहले तीक्ष्ण बुद्धि मानसिंह समझ गये कि महाराणा प्रतापसिंह क्यों नहीं आये ? उन्होंने भोजन करने से पूर्व पूछा कि महाराणा कहां हैं ? अमरसिंह ने बिनीत भाव से उत्तर दिया—“महाराणा के सिर में दर्द है, इसलिये वे नहीं आ सकें हैं, आप भोजन करें इस बात का कुछ खयाल न करें” । मानसिंह महाराणा के न आने का उद्देश्य समझ गये और उत्तर दिया:—“राणाजी से कहो, हम उनके सिर की पीड़ा का मर्म अच्छी तरह से जानते हैं जो होना था सो हो चुका अब उसके दूर करने का कोई उपाय नहीं है । यदि राणा जी ही हमारे साथ भोजन नहीं करेंगे तो और कौन करेगा ? तत्काल मानसिंह का यह सन्देश—प्रतापसिंह को पहुंचाया गया वे अनेक प्रकार से वहाँ आने के लिये टाल बाली करने लगे, पर कुछ फल न हुआ । मानसिंह इसी बात पर अड़े रहे कि जब तक राणा प्रताप मेरे साथ भोजन करने नहीं बैठेंगे तब तक मैं भोजन नहीं करूंगा ।

उन्होंने भोजन करने का कारण छिपाना उचित नहीं



समझा। उन्होंने स्पष्ट कहला भेजा :—“जिस राजपूत ने अपनी बहिन को तुर्क के हाथ बेच दिया है संभवतः जिस का मुसलमानों के साथ खान पान होता है उनके साथ राणा भोजन नहीं कर सकते।”

अब तो मानसिंह को अपनी भूल ज्ञात हुई कि ‘मान न मान में तेरा मेहमान, अपने मन से मेहमानी ग्रहण करके अच्छा नहीं किया। वे सोचने लगे कि अपमान का कारण हम स्वयम् ही बने थे। उन्होंने ग्रास (कौर) नहीं उठाया, केवल कुछ दाने अन्नदेव के नाम से उठाकर पगड़ी में रख लिये और चलते समय राणा प्रताप से कहा :—“आपके मान मर्यादा की रक्षा के ही लिये हम ने अपनी सब प्रतिष्ठा और गौरव धूल में मिला दिया है यदि आपकी इच्छा सदैव दुःख सागर में पड़े रहने की है तो भले ही पड़े रहिये। अब आप को मेघाड़ सदैव के लिये छोड़ना पड़ेगा, अब आपकी मेघाड़ में चंगुल भर ज़मीन भी नहीं मिलेगी।” इतना कहकर मानसिंह घोड़े पर सवार होने ही को थे कि प्रताप आ पहुँचे उस समय मानसिंह ने बड़े अभिमान से कहा:—“यदि आपका वर्प दमन न कर सका तो हमारा नाम मानसिंह नहीं, प्रताप ने शान्त भाव से उत्तर दिया कि आप की युद्ध क्षेत्र में देख कर ही हम प्रसन्न होंगे। पास खड़े हुए प्रताप के किसी राजपूत सरदार ने यह कटाक्ष करते हुए कहा:—“अपने साथ अपने फूफा अकबर को भी लैते आना।” मानसिंह ने अपने घोड़े पर सारा क्रोध उतारा, उस बेचारे घोड़े के जोर से पैर खगारें छोड़ा भी हवा से धातें करता हुआ, अपने स्वामी को लेकर भी दो ग्यारह हुआ।

उहां मानसिंह के भोजन की सामग्री हुई थी वह स्वामिनी भागीरथी के पवित्र, पुनीत जल से धीया गया,



जिस जगह मानसिंह ने भोजन किया वह स्थान भी धोया गया। राजपूत कुल कलङ्क मानसिंह का जिन्होंने मुँह देखा, उन सबों ने स्नान किया, जनेऊ बदले। स्वयं महाराणा प्रतापसिंह ने मानसिंह का मुख देखने के कारण स्नान कर अपने को शुद्ध किया।

उदयसागर पर जो बातें राजा मानसिंह के चले जाने पर हुई उनकी खबर मानसिंह के कान तक पहुंची और धीरे धीरे अकबर के कानों तक भी पहुंची, राजा मान ने अपनी रङ्गीन भाषा में अपनी ओर से नोन मिर्च लगा कर बादशाह अकबर के कान खूब भरे। अकबर की क्रोधाग्नि मान के अपमान को सुनकर भड़क उठी। जो अकबर एक समय राजा मानसिंह को जहरीले लड्डू खिला के मारना चाहते थे। वह आज मान के मान की मरम्मत करने के लिये प्रताप पर आक्रमण करने की तैयारी करने लगे।

❁ सूंड़ी के कागज़ पत्रों से पता लगता है कि जब मानसिंह अपने भाइयों सुसरु को दिल्ली के राज सिंहासन पर बिठाना चाहते थे तब उस समय अकबर ने उनको मारने के लिये विषैले लड्डू तैयार कराये थे Tod Rajasthan Vol. II.—लेखक।



# ग्यारहवाँ परिच्छेद

## रणचरणी का नाच

अरे अरे! सिन्दूरा बजाओ बजाओ, नगारे पै चौबे लगाओ लगाओ ।  
चतुर्वर्णसेना बुलाओ बुलाओ, ध्वजा और पताका उड़ाओ उड़ाओ ॥  
रथी सारथी वीर धाओ सिधाओ, चकाबू रचो शीघ्र सेना सजाओ  
अभी मोरचे जा जमाओ जमाओ, जबूरे सिताबी चलाओ चलाओ ॥  
निशाने पै तोपें लगाओ लगाओ, गनीमों के धुरें उड़ाओ उड़ाओ ।  
करावीन ले बाग़ दागो दगाओ, उखाड़ो पुखाड़ो गिराओ भगाओ ॥  
कटारी छुरी वाण बछीं सम्हारो भरे रक्त का सिंधु खांडा पखारो ।  
जहां शत्रु पाओ तहां पीस डारो, पुकारो\*महाराज की जै पुकारो ॥

ला० श्रीनिवास दास

अकबर का उस समय सौभाग्य सितारा बुलन्दी पर था  
एक से एक बढ़कर वीर पुरुष उसके दरबार में थे भगवान  
रामचन्द्र जी के साथ केवल एक विभीषण लङ्का की स्वाधी-  
नता नष्ट कराने वाला था । अकबर के दरबार में घर का भेदी  
लङ्का ढावे' बहुत से विभीषण इकट्ठे हो गये थे । बाहर के  
बैरी की अपेक्षा घर की फूट बहुत बुरी होती है । जिस जगह  
यह पैशाचिनी फूट पहुंचाती है । उसी का सत्यानाश करके  
छोड़ती है । पाठक ! हृदय थाम कर कड़ा कलेजा करके सुनो,  
इस चाण्डालिनी फूट ने क्या नहीं कराया है । चाण्डालिनी व  
पैशाचिनी फूट ! तुम्हें हम क्या कह कर सम्बोधन करें ? तू ने  
इस संसार में क्या नहीं कराया है । मन्थरा बन कर तू ने रानी  
कीकैयी को बहकाया जिससे बेचारे राजकुमार राजचन्द्र को

---

\* सुब पद्य में महाराज के स्थान में पृथ्वीराज शब्द है । लेखक



बन में कठोर क्लेश सहन करने पड़े, विभीषण बनकर तू ने सुवर्णपुरी लड्डू को मिट्टी में मिलवा दिया, दुष्ट दुर्योधन बनकर तू ने इस स्वर्ग तुल्य भारत भूमि को श्मशान भूमि बना दिया । पामर जयचन्द्र बनकर रत्न-गर्भा भारत-माता के हाथ पैर पराधीनता की जञ्जीर में जकड़वा दिये अब तू शक्तसिंह, सागर जी आदि के रूप में दिल्लीश्वर के दरबार में पहुंच गई जिससे मेवाड़ का सत्यानाश हुआ इस लिये कहते हैं कि तुझे किस नाम से सम्बोधन करें । पिशाचिनी तेरी कपट नीति से कोई नहीं बच सकता है । जो एक बार तेरे विषकुम्भ मुखोपम फल को चख लेता है । वह फिर तुझसे कभी प्रीति नहीं छोड़ता है । तू उसे सांपिनी की तरह डस जाती है । अरे चाण्डालिनी ! अब तो इस वृद्धा भारत माता पर से अज्ञानता के भयानक और डरावने बादल हटाले । बस, बहुत हो चुका अब तो इससे दूर रह ।

राजा मानसिंह का अपमान अकबर के लिये अच्छा ही हुआ । मानो भभकती हुई अग्नि में घी की एक आहुति छोड़ी गई । अकबर पहले से ही प्रताप को अपने अधीन करना चाहते थे मानसिंह के अपमान का उन्हें एक और बहाना मिला । अपने दुलारे युद्ध मन्त्री मानसिंह का अपमान उन्होंने अपना ही अपमान समझा । जैसे क्रोधित सर्प फुफकार मारने लगता है वैसे ही वे भी मानसिंह के अपमान के कारण अपने लोगों को मेवाड़ पर चढ़ाई करने के लिये उत्तेजित करने लगे । अभाग्य वंश अकबर के दरबार में महाराणा प्रतापसिंह के छोटे भाई शक्तसिंह थे । प्रतापसिंह के वैमातृज भाई सागर भी शाही दरबार में थे उन सब से बादशाह ने अपने मोहिनी मन्त्र के बल से प्रताप को यहां की एक एक करके सभी बातें जान लीं । अपने प्रतिद्वंद्वी प्रताप के सभी भेद जानकर बादशाह



मेवाड़ पर चढ़ाई करने का प्रबन्ध सोचने लगे । अकबर को इस बात की बहुत चिन्ता थी कि सभी राजपूतों ने मेरे सामने सिर नवा दिया है पर अभी तक प्रतापसिंह अपनी टेक क्यों रखे हुये हैं ।

अकबर के पास प्रतापसिंह की स्वाधीनता नष्ट करने के सभी साधन उपस्थित थे । पर बेचारे प्रताप के पास अपनी स्वाधीनता को रखने के लिये क्या था ? प्रताप के पास न तो मुगल सेना के समान विशाल सेना थी, न धन बल था और न उनके पास राजपूत कुल कलङ्कों की भाँति घर के भेदी लड्डा ढाहने वाले विभीषण मुगल थे । पर था उनके पास मातृभूमि के उद्धार करने का उत्साह, देशभक्ति और धर्म । प्रेम बश अपने इस हृदय के बल के कारण ही प्रताप अपनी सुष्टी भर सेना के साथ समुद्रवत् बादशाही सेना का सामना करने को तैयार हुये । जिस दिन मानसिंह अभिमान पूर्वक भोजन के थाल पर से उठ गये थे उसी दिन प्रताप ने समझ लिया था किसी न किसी दिन रणचण्डी का नाच हुये बिना नहीं रहेगा । वे निश्चिन्त नहीं थे । उन्होंने अपने सरदारों और वीर राजपूतों से परामर्श लिया तब सब ने एक स्वर से कहा कि प्राण रहते हम कभी आपका साथ नहीं छोड़ेंगे । महाराणा अपने इन सरदारों और राजपूत वीरों के भरोसे ही अपनी जन्मभूमि की स्वाधीनता की रक्षा करने के लिये तैयार हुये जिसके कारण वह अमर हो गये । जब तक संसार है तब तक बड़े आदर के साथ प्रताप का नाम लिया जायगा ।

प्रताप अपनी कुछ राजपूत सेना के साथ पहाड़ी प्रदेश में रहते थे । उनकी राजधानी कुम्भलगेर उदयपुर के पश्चिम ओर थी, इसकी लम्बाई चौड़ाई दोनों ओर आलीस कोस तक फैली थी। यह स्थान कर्णत से पश्चिमवर्ति था । पर्वत-माला



शहर पनाह का काम दे रही थी । बीच बीच में कहीं छोटे छोटे पानी के भरने अपनी अनुपम शोभा को दिखला रहे थे । कहीं कहीं बीच में पर्वत और घना जङ्गल उस शोभा को और भी बढ़ा रहे थे । उस स्थान की यह प्राकृतिक शोभा देखने, योग्य ही थी । उदयपुर को इस दुर्गम पहाड़ी प्रदेश का मध्य स्थल कहते हैं । उदयपुर के जिस ओर होकर वहां जाना पड़ता है वह बहुत दुर्गम और तङ्ग पहाड़ी रास्ता है । उस दुर्गम स्थान पर खड़े होकर जिधर निगाह डालिये गा, उस तरफ ही पर्वत श्रेणी और हरे हरे वृक्षों के सिवाय और कुछ दिखलायी नहीं पड़ता है । कुम्भलमेर के इस निकटवर्ती स्थान को ही हल्दी घाटी कहते हैं । अजमेर प्रभृति स्थानों से मुगल सेना इस मार्ग से पहाड़ी प्रदेश में आवेगी, यह विचार कर उसे रोकने के लिये प्रताप अपनी सेना को हल्दीघाटी की ओर ले चले । हल्दीघाटी के आस पास के स्थानों में से प्रताप के बाईस हजार बहादुर अपनी मातृभूमि के लिये शोणित तर्पण करने के लिये इकट्ठे हुये ।

राजपूताने के उस कठिन पहाड़ी प्रदेश में भील आदि कई पहाड़ी असभ्य जातियां रहती हैं । भील राजपूताने के आदि निवासी हैं । मेवाड़ प्रदेश के पहाड़ी स्थानों में भील राजपूताने भर से अधिक मिलते हैं । राजपूतों ने भीलों को पहाड़ों में भगाकर उनके देश पर आधिपत्य जमा लिया है । सब से भले मूढ़, जिन्हें न व्यापै जगत गति ।' भील लोग अवश्य ही ऐसे हैं परन्तु चाहे वे असभ्य हों, पर उनकी अपने महाराणा के प्रति अटल भक्ति होती है । अवश्य ही वे प्लेटफार्म पर खड़े होकर गला फाड़ कर अथवा अखबारों में कलम कुठार चला कर ही अपनी राजभक्ति की सीमा समाप्त नहीं कर देते हैं पर वे महाराणा पर विपत्ति आते ही अपनी राज और



देशभक्ति का ऐसा अनुपम परिचय देते हैं, जो शायद संसार के अन्य देशों में मिलना कठिन हो । भील जाति अब भी स्वाधीन भाव से शान्ति पूर्वक रहती ।

महाराणा प्रतापसिंह को भील जाति ने समय समय पर खूब सहायता दी थी, जिस समय बाईस हजार राजपूत अपनी जन्मभूमि के गौरव की रक्षा के लिये समर रूपी यज्ञ में अपने प्राणों की आहुती देने के लिये इकट्ठे हुए थे, उस समय भील वीरों ने भी राणा प्रताप का साथ दिया था । राजभक्ति और देशभक्ति की डींग हांकने वालो ! एक बार अपनी कल्पना रूपी आंखों से देखो तो सही मेवाड़ की स्वाधीनता की रक्षा के लिये अगणित जङ्गली भील अपना तीर कमान लेकर इकट्ठे हुये थे । अपने महाराणा की प्रतिष्ठा को स्थिर रखने के लिये असंख्य भील पत्थर लेकर चारों ओर पहाड़ों पर बैठ गये । मुग़ल सेना पर लुढ़काने के लिये पत्थरों के टुकड़ा के ढेर के ढेर जमा कर लिये थे ।

बादशाही सेना भी मेवाड़ के गौरव और महाराणा प्रताप की स्वाधीनता नष्ट करने के लिये चलने लगी । अकबर ने युद्ध सचिव मानसिंह, महाराणा प्रतापसिंह के छोटे भाई शक्तसिंह, उनके दूसरे भाई सागर जी, और सागर जी के पुत्र महावत-खां आदि के साथ एक विशाल सेना भेजी, उस विशाल सेना का नायक अपने ज्येष्ठ पुत्र युवराज सलीम को बनाया । १६३२ सन्वत् के ग्रीष्म ऋतु के आरम्भ में बादशाही सेना<sup>१</sup>शाहजहाँ सलीम की अध्यक्षता में मेवाड़ पर छावा करने के लिये रवाना हुई

१ सलीम इस युद्ध में गया था कि नहीं, इसमें संदेह है मुसकामानी इतिहासों के प्रसिद्ध ज्ञाता, जोधपुर के मुन्शी देवीप्रसाद जी लिखते हैं:—  
“शाहजहाँ सलीम की जायु इस समय ६ वर्ष की थी इसलिये इस समय वह बादशाही सेना के अफसर होकर मेवाड़ में नहीं जा सकते थे” । मुहम्मद



मुग़ल सेना-प्रताप की सेना से कहीं अधिक थी। मुग़ल सेना ने आरम्भ से ही एक चालाकी चली कि अपनी सेना बहुत से स्थानों में फैला दी कि जिससे प्रतापसिंह को पता ही न लगे कि मुग़ल सेना कितनी है? किन्तु मुग़ल सेना की यह चालाकी चल न सकी। प्रताप के जासूसों ने मुग़ल सेना के आने की खबर की। मुग़ल सेना समझती थी कि प्रताप पर्वत कन्दरा परित्याग करके खुले मैदान में बादशाही सेना पर आक्रमण करेंगे। किन्तु स्वदेश भक्त प्रताप ने ऐसा नहीं किया। मुग़ल सेना ने देखा कि प्रताप युद्ध के लिये मैदान में नहीं आये। वे पहाड़ों से ही युद्ध करने को तैयार हुये। तब तो वह देशद्रोही कुलद्रोही मानसिंह की सलाह से आगे बढ़ने लगी।

फ्राए राज स्थान के लेखक ने भी ऐसा ही लिखा है। युवराज सलीम का जन्म १५६९ में जोधपुर की राजकुमारी के गर्भ से हुआ था। इस हिसाब से हल्दीघाटी के युद्ध के समय जो संवत् १६३२ अर्थात् सन् १५७६ ई० में हुआ था सलीम की आयु ७-८ साल से अधिक नहीं हो सकती है। लेकिन टाड साहब ने सलीम को हल्दीघाटी के युद्ध का नेता लिखा है। हो सकता है कि अकबर ने हल्दीघाटी की विजय का सेहरा सलीम के सिर पर बांधने के लिये उसे वहां भेज दिया हो। सम्भवतः १०—१५ वर्ष पीछे जब प्रताप के साथ फिर भीषण युद्ध हुआ उस समय सलीम युद्ध के नेता रहे हों। 'आईने अकबर' प्रभृति ग्रन्थों में इसका कुछ भी पता नहीं लगता है। निज़ामी कृत 'सबकाते अकबरी' और बदाजनी कृत 'मुन्तखबुत्तारीख' ग्रन्थ में मानसिंह के सेनापति होने की बात लिखी है। उनमें सलीम का नाम भी नहीं है। Badauni Vol. II, P. 228. Elliols's History Vol. P. 397. Elphinstone P. 506. बदाजनी स्वयं इस लड़ाई के मैदान में मौजूद था। उसने इस युद्ध का विवरण बहुत बड़ा लिखा है। उसने लिखा है कि मानसिंह ने अपनी विजय का हाल अकबर को लिखा। अकबर ने मानसिंह और उनके अमीरों को हुनाम अकराम दिया। बदाजनी के विवरण में भी सलीम का नाम नहीं है।—लेखक।



श्रावण मास के सातवें दिन रणचण्डी का बिकट नृत्य आरम्भ हुआ । हल्दी घाटी के पवित्र क्षेत्र में स्वदेश की स्वाधीनता के निमित्त अगणित राजपूतों के खून की नदी बहने लगी । राजपूत लोग जन्मभूमि की रक्षा के लिये अपना खून बहाकर ही चुप नहीं हुए किन्तु उन्होंने मुगल सेना के अनेक वीरों का सिर तन से जुदा कर दिया । हल्दीघाटी का युद्ध सामान्य नहीं था वह युद्ध बड़ा बिकट था । स्वदेश रक्षा के निमित्त एक ग्रीस देश को छोड़कर और कहीं भी ऐसा युद्ध हुआ है या नहीं इसमें सन्देह है । एक ओर प्रचंड मुगल सेना समुद्र के समान आगे बढ़ने लगी । दूसरी ओर से महाबली राजपूत उस सेना की गति रोकने के लिये आगे बढ़े । मानों दो मत्त हाथियों का मल्लयुद्ध होने लगा । उसी तड़क घाटी में जहां आदमियों को मार्ग मिलना कठिन होता था, वहां अगणित हिन्दू मुसलमान एक दूसरे को मारने फाड़ने चीरने के लिये छाती फैलाकर खड़े हुये थे । जहां तक दृष्टि पहुंचती थी वहां तक नरमुण्ड ही नरमुण्ड दिखायी पड़ते थे ।

पाठक ! एक बार अपनी कल्पना शक्ति से देखो कि कैसा भयङ्कर युद्ध था । तूफान उठने से पहले समुद्र निश्चल शान्त और गम्भीर होता है, परन्तु तूफान के आते ही समुद्र की लहरें भयङ्कर रूप धारण कर लेती हैं समुद्र की लहरें कूदती उछलती नाचती हुई आकाश से आते करना चाहती हैं ठीक वैसे ही गति दोनों ओर की सेना की हुई । क्षण भर के लिये दोनों सेनाओं के वीरों ने एक दूसरे को स्थिर निश्चल और गम्भीर भाव से देखा । परन्तु बीणा बजने की उन्मादिनी ध्वनि से पहाड़, वन, पशु, पक्षी सभी कोधित हो उठे । बाजे की उस उन्मादिनी ध्वनि से हाथी छोड़े पैदल सब ही युद्ध के लिये उन्मत्त हो गये । दोनों दल एक दूसरे पर दूध पड़े ।



दल की ओर से “दीन, दीन जहाद” नाद सुनाई पड़ने लगा । राजपूत—सेना के “हर हर महादेव” शब्द की ध्वनि से आकाश प्रति ध्वनित होने लगा । राजपूत वीर मुग़ल सेना पर जैसे भूखा सिंह हरिणों के भुण्ड पर झपटता है । वैसे ही दूट पड़े । मुग़ल सेना राजपूतों का साहस बल और आत्म त्याग देख कर चकित और स्तम्भित हुई । मेवाड़ भूमि की स्वाधीनता को बचाने के लिये राजपूतों ने अपने प्राण प्रण से युद्ध किया । वीरवर प्रतापसिंह भी निश्चिन्त नहीं थे । वे निडर होकर सबके आगे थे और शत्रुओं का सैनिक बल नष्ट कर देना चाहते थे उन्हें इसमें सफलता भी हुई । उन्होंने अपने असाधारण साहस से मुग़ल सेना का चक्रव्यूह तोड़ दिया । प्रताप का साहस और युद्ध कौशल देखकर राजपूत और भी उत्साह के साथ लड़ने लगे । जिस तरह भूखा व्याघ्र बड़े बड़े हाथियों को क्षण भर में चीर डालता है, वैसे ही अकेले प्रताप ने असंख्य मुग़लवीरों को तलवार से काट डाला । राजा मानसिंह से कहा था कि मैं युद्ध में आपको देखकर प्रसन्न होऊंगा । बस, वे इस युद्ध स्थल में मानसिंह को ढूँढ़ने लगे पर कहीं मानसिंह का पता न लगा । वे दो बार बैरियों की सेना में पहुँच गये पर कहीं भी मानसिंह का पता न लगा । मानसिंह प्रताप की रत्नमूर्ति से भयभीत होकर नौकरों की भीड़ में अपनी रक्षा कर रहे थे । दूसरी बार प्रताप मानसिंह को ढूँढ़ते ढूँढ़ते बहुत सी मुग़ल सेना के बीच में पहुँच गये । किन्तु राजपूत वीरगण भी निश्चिन्त नहीं थे । उन्होंने प्राणों की बाजी लगाकर अपने महाराणा की रक्षा की । सैकड़ों राजपूतों ने अपने महाराणा की जीवन रक्षा के लिये सहस्र प्राणों का विसर्जन कर दिया । भील लोग भी शान्त नहीं थे । उन्होंने वृक्षों की ओट में से तीरों से, पत्थरों से मुग़ल सेना के सैकड़ों वीरों के सिर धकनाचूर कर दिये । दोनों ओर से घमासान युद्ध हुआ ।



# बारहवाँ परिच्छेद

## भाला सरदार का आत्मत्याग

‘ मित्र परीच्छहु मैं कियो सरनागत प्रतिपाल ।  
निरमल जस शिवि सो लियो तुम या काल कराल ॥

हरिश्चन्द्र

दो बार मुगल सेना के बीच में पहुँच कर और मानसिंह को न पाकर प्रताप निश्चिन्त नहीं हुये उनकी अन्तर्व्यापिनी प्रचण्ड अग्नि अभी नहीं बुझी थी वे देश द्रोही कुलकलङ्क मानसिंह को इस समय भी मत्सिंह की तरह खोजते थे । नर केसरी प्रताप युद्धक्षेत्र में चारों ओर आँखें गड़ाये हुए देख रहे थे कि देश द्रोही भीषण बैरी मानसिंह कहाँ है ? उस समय प्रताप अपने चेतक घोड़े पर सवार थे, वास्तव में चेतक घोड़ा प्रताप के योग्य ही था जैसे प्रताप धीर थे, वैसा ही उनका घोड़ा भी धीर था । जैसे प्रताप रण निपुण थे, वैसा ही चेतक भी रण निपुण था । उसी चेतक पर सवार निज्जर वीर घर प्रताप राजा मानसिंह की खोज में घूम रहे थे । बालक जैसे खेल में मट्टी के खिलौनों को उखाड़ पछाड़ कर फेंक देते हैं, वैसे ही मानसिंह की खोज में प्रताप मुगल-सेना के अनेक वीरों को टुकड़े टुकड़े कर रहे थे, उनकी रण कला देखकर मुगल सेना आश्चर्य रह गई, किन्तु प्रताप को कहीं भी मानसिंह दिखलाई न पड़े । अपने बीच में मुगल-वीर प्रताप को देख कर उन्हें मार डालने की चेष्टा करने लगे, प्रताप के एक एक करके दिव इशक भूमि प्राची हुए घर



प्रताप को इसकी कुछ परवाह न हुई, वे अकेले ही मुग़ल-वीरों का सामना करते हुये, देशद्रोही मानसिंह को ढूँढने लगे।

मानसिंह का तो कहीं पता नहीं लगा, पर सामने ही वे क्या देखते हैं कि अकबर का युवराज सलीम हाथी पर सेना के बीच में है। मानसिंह न सही सलीम ही सहो यह सोच कर अपने घोड़े के एड़ लगाई घोड़ा भी अपने स्वामी के इशारे से आगे बढ़ा। उनको आगे बढ़ते देख कर चारों ओर मुग़ल सिपाही युवराज की रक्षा के लिये जमा होने लगे और उन्होंने मिल कर प्रताप पर आक्रमण किया, परन्तु प्रताप की वीरता के सामने मुग़ल सैनिकों का आक्रमण व्यर्थ हुआ। किन्तु प्रताप ने इसका कुछ ख्याल नहीं किया। स्वदेश के लिये उस युद्ध में प्राण त्याग मानों उनका सिद्धान्त था। उन्होंने दूर से सलीम पर तेज बछा चलाया दैवयोग से वह बछा सलीम के लोहे के हौदे से टकरा कर व्यर्थ हुआ। तब प्रताप ने सलीम की ओर अपना घोड़ा बढ़ाया अपने स्वामी का अभिप्राय समझ कर चैतक एक छलाङ्ग मार कर सलीम के हाथी के निकट पहुँच गया। तेजस्वी चैतक ने हाथी के माथे पर टाप जमा दी। पेरवत के समान उस महागज के माथे पर छवैश्रवा की भाँति चैतक का पैर शोभायमान होने लगा। प्रताप की इस रण निपुणता को देखकर थोड़ी देर के लिये वीरसबुद्धी आवाकू रह गई उनके शत्रु भी उनके इस साहस की प्रशंसा करने लगे। इस अवसर पर प्रतापसिंह एक क्षण के लिये भी नहीं ठहरे उन्होंने मुहूर्त मात्र का विलंब करना भी उचित नहीं समझा। उन्होंने सलीम को मारने के लिये तलवार चलाई वह तलवार सलीम के हौदे से फिर टकराई पर इस बार खाली नहीं गयी हौदे से उछल कर महावत के लगी।



तलवार के आघात से बेचारा महावत पृथ्वी पर आगया । बिना महावत का हाथी युवराज सलीम को लेकर भाग गया, यदि हाथी न भागता तो अकबर की आँखों का प्रदीप वहीं बुझ जाता । दैव कृपा से ही अकबर के युवराज सलीम की रक्षा हुई ।

युवराज सलीम को इस तरह से विपत्ति में फंसा देख कर मुगल सेना पागल हो उठी सब की सब सेना वीर प्रताप के प्राणों की ग्राहक बन बैठी मुगल सेना ने चारों ओर से प्रताप को घेर लिया । प्रताप ने भीम विक्रम से अनेक शत्रुओं को मार गिराया । पर अकेले प्रताप को देख कर मुगल सेना का जोश ठंडा नहीं पड़ा । जिस तरह से समुद्र की तरङ्गें पहाड़ से पहली बार टक्कर खा कर दूसरी बार और भी जोर से टक्कर खाती हैं उसी तरह से मुगल सेना पहिले से अधिक जोर के साथ प्रतापसिंह पर दूटी । अकेले प्रताप और मुगल सेना के असंख्य वीर, कैसा भयङ्कर युद्ध है । अब प्रताप की कौन रक्षा करेगा । अकेला वीर इतनी विशाल सेना से कब तक लड़ेगा ? यह चिन्ता सबके चित्त को डाँवाँडोल करने लगी । सभी को प्रतापसिंह के जीवन की चिन्ता हुई असंख्य मुगल वीरों से घिरने के अतिरिक्त उनके शरीर पर तीन बलों के तीन तलवार के और एक गोली का आघात लम खुका था इतने में ही "जय प्रताप की जय" शब्द सुनाई पड़ा । यह शब्द सुनते ही प्रताप पहले से और भी अधिक उत्साह के साथ लड़ने लगे । इतने में ही सावड़ी के भाला सरदार मन्ना प्रताप सिंह जी के पास पहुँच गये । उनके ऊपर से राजकुमार बीरबल बख्शकर अपने ऊपर लयवा लिखा । मुगल सेना ने भाला सरदार मन्ना को भी महाराणा प्रताप समझा, यह प्रताप की लीज



कर चारों ओर से\* भाला सरदार मन्ना पर दूट पड़ी। भाला सरदार मन्ना अनेक मुगल सैनिकों को यमलीक पहुंचा कर मुगल सेना के हाथ से मारा गया जिससे महाराणा प्रताप के जीवन की रक्षा हुई। धन्य ! भाला सरदार !! धन्य !!! तुम्हारे जैसे आत्मत्यागियों के कारण ही मेवाड़ के गौरव की रक्षा उस कठिन काल में हुई थी।

प्रताप भाला मन्ना के आत्मत्याग को भूले नहीं। उसी दिन भाला मन्ना के वंशधरों को राज चिन्ह सहित, महाराणा की दाहिनी ओर बैठने तथा महलों तक नक्कारा बजाते हुये आने और राजकीय भण्डा अपने साथ रखने का अधिकार मिला। उन्हें सत्रि देश में ज़मीन दी गई।

\* भारतीय इतिहास में और भी इस प्रकार के अनेक उदाहरण मिलते हैं। युद्धों में बाजीराव प्रभु पांडे ने शिवाजी की भी इस तरह से रक्षा की थी। जब बाजीराव दूसरे दुर्ग में नहीं पहुंच सके तब तक वह बाजीराव रणक्षेत्र में लड़ता रहा और अन्त में शिवाजी की रक्षा के लिये अपने प्राणों की आहुति दी। ऐसी ही



# तेरहवाँ परिच्छेद

## विजय या पराजय

“मरना भला है उसका जो जीता है अपने लिये  
जीता है वह जो मर चुका स्वदेश के लिये।”

हल्दीघाटी के महासंग्राम में बाइस हजार राजपूत वीरों में से चौदह हजार वीरों ने मातृ-भूमि के गौरव की रक्षा के लिये हंसते हंसते प्राण प्यारी के समान मृत्यु का गले लगा लिया। प्रताप के आत्मीय जन ही लगभग पांच सौ थे। ग्वालियर के राज्यच्युत राजा सहाय भी महाराणा के आश्रय में मेवाड़ में रहते थे, वे अपने लड़के खण्डेराव और तुमार-वंशीय कोई साढ़े तीन सौ घोड़ों के सहित मारे गये थे। भाला सरदार मानसिंह अपने डेढ़ सौ आदमियों सहित प्रताप के जीवन की रक्षा करते समय मारे गये। प्रताप ने देखा कि इस तरह से और भी राजपूत मारे गये। सम्झा हो चली थी, तब वे युद्ध सम्बन्धी कई प्रयोजनीय आश्चाय देकर दुःखित मन से रणस्थल से हटे। हल्दीघाटी युद्ध समाप्त हुआ, मानसिंह की मनोकामना पूर्ण हुई।

सोचो ! पाठक !! सोचो !!! इस युद्ध में प्रतापसिंह की जय हुई अथवा पराजय, यह सब है कि प्रताप के असंख्य वीर मारे गये। मुगल सेना युद्धस्थल से हटी नहीं। प्रताप रणस्थल से चले आये। परन्तु हमारी संझना में इतने पर भी प्रताप का पराजय नहीं हुई, उनकी विरल रणांग विजय हुई, उन्हें कहेंगे तो कैसे ? सुनो ! मुगल सम्राट और मुगल सेना, अपने साम्राज्य का विस्तार करने के लिये लड़ रहे थे, राज्य प्रताप और राजपूत जाति अपने देश के गौरव की रक्षा के लिये,



राजपूत जाति की स्वाधीनता के लिये लड़ रहे थे । राजपूत जाति की लड़ाई सिद्धान्त विषयक थी, मुग़लों की अपने स्वार्थ की थी । जो लोग सिद्धान्त विषयक देश की मान मर्यादा और गौरव की रक्षा के लिये लड़ते हैं वे कभी हार जीत का विचार नहीं करते हैं । उनकी हार भी लाख जीतों से बढ़कर होती है । यदि उनकी हार जीत से बढ़ कर न होती तो आज ऐसे लोगों को कौन स्मरण करता ? उनकी हार जीत से बढ़ कर मनुष्यों के हृदयों पर मानसिक प्रभाव डालने वाली न होती तो कौन उनके नाम की पूजा करता । जब ऐसी हार में जीत से कहीं अधिक शक्ति है, तब हम कैसे इस को पराजय कहें ? हल्दीघाटी के महासंग्राम में मुग़ल सेना से राजपूत अपनी अतुलनीय वीरता का परिचय देकर क्षण-मात्र के लिये हट अवश्य गये, जब तक संसार है वे देश भक्तों के हृदय मन्दिर से हट नहीं सकते, उनका नाम सदैव की अमर होगया है । स्मरण रखो ! यदि गौरववृद्धि और अमरत्व लाभ ही विजय के चिन्ह हैं, तो राजपूत पराजित नहीं हुए । राजपूतों की विजय हुई । संसार के किसी इतिहास में हल्दीघाटी के युद्ध के समान पराजय, पराजय नहीं गिनी गई है, वह पराजय विजय से बढ़कर समझी गई है । यदि ऐसा न होता तो यूनान देश थर्मोपली की सङ्कीर्ण पार्श्वतीय घाटी में महावीर लिलोनिडाज के अधीन, जिन थोड़े से योद्धाओं ने फारस के बादशाह की विशाल सेना के प्रवेश पथ में पहुँच कर आत्मबलि दी थी, उनकी कीर्ति कथा का कदापि इतिहास लेखक बखान न करते । थर्मोपली के युद्ध के समान ही हल्दीघाटी में चौदह हजार राजपूत देश के लिये मर कर अपनी कीर्ति अमर कर गये । तब कैसे कहें कि इस युद्ध में राजपूतों की पराजय हुई ।



# चौदहवां परिच्छेद

## बन्धु मिलन

\*किं मे भ्रातृविहीनस्य स्वर्गेण सुरससमाः ✓

यत्र ते मम स स्वर्गो नायं स्वर्गोपमो मम" ॥

\*राजीवलोचन खवन जल तनु ललित पुलकावलि बनी ।

अति प्रेम हृदय लगाइ अनुजहिं मिले प्रभु त्रिभुवन धनी ॥

प्रभु मिलत अनुजहिं सोह मो पहुँ जाति नहिं उपमा कही ।

जनु प्रेम भरु श्रृङ्गार तनु धरि मिलत घर सुखमा लही ।"

गो० तुलसीदास

महाभारत में एक कथा है कि महाभारत के युद्ध के पीछे जिस समय धर्मराज युधिष्ठिर स्वर्ग में पहुँचे, उस समय वे वहाँ अपने भाइयों और द्रौपदी को न पाकर, कहने लगे कि मुझे ऐसा स्वर्ग न चाहिये, जहाँ मेरे भाई और द्रौपदी न हों, भाइयों और द्रौपदी से शून्य स्वर्ग भी मेरे लिये नरक है, और वह नरक जहाँ मेरे भाई हैं स्वर्ग से भी बढ़कर है । वास्तव में भ्रातृ प्रेम ऐसा ही होता है । भारतवर्ष के दुर्भाग्य वश आज भाई, भाई में प्रेम की पारस्परिक, निर्मल, सुख धारा नहीं बह रही है, यदि भाई, भाई का प्रेम प्रवाह न सूखता तो कदापि इस देश की ऐसी अधोगति न होती एक दिन भारतवर्ष में, भाइयों में प्रेम का अखण्ड राज्य था । परन्तु वह बात ही आज नहीं । पर यह देखते में आया है, भाई भाई में प्रेम भाव न हो पर जब कभी किसी पर भावना

भाइयों से विहीन इस स्वर्ग को लेकर मैं क्या करूँ ? ऐसा स्वर्ग मुझे नहीं चाहिये वे जहाँ होंगे, वहीं मेरा स्वर्ग है" ।



आती है तो खून का असर दूसरे भाई पर भी हुए बिना नहीं रहता है। नित्य प्रति ऐसी घटनाएँ देखने में आती हैं। इस हल्दीघाटी के युद्ध में भी ऐसी ही एक घटना हुई।

रणभूमि से निकल कर प्रताप अपने चेतक घोड़े पर अकेले ही चले। उस समय वे बहुत थके हुए थे उनका शरीर क्षत-विक्षत हो रहा था, उनके प्यारे घोड़े चेतक की भी ऐसी ही दशा हो रही थी। परन्तु उस दशा में भी चेतक अपने स्वामी को लेकर बड़े वेग से जा रहा था। प्रताप को जाते देख कर उनके पीछे दो मुगल सिपाही भी दौड़े जिनमें एक का नाम खुरासानी और दूसरे का नाव मुलतानी था। प्रताप प्रथम तो समस्त दिन युद्ध में व्यस्त रहने के कारण ही थके हुए थे, दूसरे युद्ध का फल और स्वदेश की चिन्ता के कारण दुःख सागर में डूबे हुये थे। उन्हें अपने पीछे मुगल सवारों के आने की कुछ खबर नहीं हुई। जिस मार्ग से प्रताप जा रहे थे उस मार्ग के बीच में नाला था, चेतक छलांग भर कर नाले को पार कर गया, परन्तु उन दोनों मुगल सवारों का घोड़ा नाला पार नहीं कर सका। कुछ आगे बढ़ने पर प्रताप ने अपनी स्वदेशी भाषा में एक आवाज़ सुनी “हा नौला घोड़ारा सवार हो”। इस आवाज़ के सुनते ही प्रताप ने पीछे की ओर फिर कर देखा तो मालूम हुआ कि दोनों मुसलमान सवारों की मारकर, तीर की भाँति उनका भाई शक्तसिंह उनके पीछे लपक रहा है। प्रताप, धीरे-गम्भीर स्मिर भाव से खड़े हो गये, सोचने लगे कि मुझे मारकर शक्तसिंह अपनी प्रतिष्ठा को पूर्ण किया चाहता है, नहीं तो उन दोनों मुगल सवारों के मारने की क्या आवश्यकता थी? मन ही मन कह लगे:—“आओ! शक्त !! आओ !!! मुझे मारकर अपनी प्रतिष्ठा



पूर्ण करो, जो कुलाङ्गार नराधम, युद्धस्थल से मुख मोड़ता हो उसकी यही दशा होनी चाहिये ।”

यह पहले लिखा जा चुका है कि शक्तसिंह और प्रताप सिंह का आपस में भगड़ा हो चुका था । इसलिये शक्तसिंह प्रताप को छोड़कर अकबर से जा मिले थे, वे भी मुगल सेना के साथ साथ हल्दीघाटी के युद्ध में आये थे । उन्होंने न हल्दीघाटी के युद्ध में भाई का पराक्रम देखा । देखा अनेक स्वजातीयों को देश के लिये मरते हुये, देखा अपने जेष्ठ भ्राता और स्वदेश वासियों की देशभक्ति और वीरता । यह सब देखकर उनके हृदय में अपने भाई के प्रति भक्ति हो गई । उन्होंने जिस समय देखा कि दो मुगल सवार भाई के पीछे जा रहे हैं, उस समय वे अपने भाई के प्रति समस्त द्वेषभाव को भूल गये— उस समय उन्होंने धर्मराज युधिष्ठिर की उस नीति का अवलम्बन किया जो उन्होंने चित्रसेन गन्धर्व द्वारा पकड़ने पर घोषणा की थी:—

“ते शतं द्विषयं पञ्च परस्पर विवादसे ।

परैस्तु मित्रहे माप्ते स्वयं पञ्चाधिकं शतम् ॥

आपस के भयानक होने पर कौरव-सौ और हम पांच हैं, पर दूसरे के मुकाबिले में हम एक सौ पांच हैं, मुगल सवारों को जाते देख कर शक्तसिंह सोचने लगे कि जिस प्रताप ने सज्जपूत जाति के कौरव को अभिमत स्वीकृत है, उसी मेरे भाई प्रताप की ये मुगल सवार हत्या करने जाते हैं बस यह सोच कर मुगल सवारों को मारकर प्रतापसिंह के जीवन की रक्षा की । उसके पीछे भाई को डहराया और उससे जाकर मिले । जाकर कहा सुन्दर-सुन्दर था, जब मुहल से बिलुड्ड हुये दोनों भाई एक दूसरे के गले मिले । शक्तसिंह ने अपने भाई के सिर पर मेथन सहकर मुहल अपराधों की क्षमा मांगी, प्रताप



ने सजल नयन से भाई को गले लगाया। उस समय प्रताप हल्दीघाटी की पराजय भूल गये मुगलों ने हल्दीघाटी पर विजय लाभ किया था, प्रताप ने अपने भाई के हृदय साम्राज्य पर अधिकार प्राप्त किया। उस समय उनके हृदय में अद्भुत आनन्द का सञ्चार हुआ। मानो राम और भरत बहुत दिन पीछे मिले।

परन्तु हाय ! यह आनन्द दायक समय, अपूर्व सम्मिलन भाइयों का मिलान बहुत देर तक न रह सका। क्योंकि महाराणा प्रतापसिंह का घोड़ा—चेतक उस दिन युद्धस्थल में बहुत थक गया था। उसके शरीर पर कई घाव भी आये थे। जिस समय दोनों भाई भ्रातृ सम्मिलन का अपूर्व आनन्द अनुभव कर रहे थे। उस समय प्रताप का घोड़ा चेतक अपने स्वामी का साथ छोड़ कर इस लोक से सिधार गया। घोड़े की मृत्यु देख कर प्रताप से रहा न गया। वे फूट फूटकर धाड़ मार कर ऐसे रोते लगे, जैसे कोई अपने खजन की मृत्यु पर रोता हो। वर्तमान जारोली के निकट जहां चेतक की मृत्यु हुई थी, वहां चेतक के स्मारक स्वरूप में एक वदिका बनाई गई थी, उसको चेतक का चबूतरा कहते हैं। कहते हैं, मेवाड़ के जिस घर में प्रताप का चित्र है, उस घर में चेतक का भी चित्र है।

इस घटना के पीछे शक्त वहां बहुत देर नहीं ठहरे, उन्होंने अपना घोड़ा जिसका नाम अङ्कुरों था प्रताप को दे दिया प्रताप उस पर सवार हो कर चल दिये और शक्तसिंह उनको यह कह कर कि सुविधा होने पर फिर मिलूंगा। मुगल शिविर की ओर लौट दिये।

शक्तसिंह ने जिन दो सवारों को मारा था, उनमें से बे खुरासानी के घोड़े पर सवार हो कर वापिस आये। युवराज सलीम ने उनसे खुरासानी घोड़े पर आने का कारण पूछा,



पहले शक्तसिंह ने असली भेद को छिपाना चाहा, परन्तु सलीम ने समस्त अपराधों को क्षमा करने की प्रतिज्ञा की और असली हाल कहने के लिये शक्तसिंह से आग्रह किया। तब तो उन्होंने व्यौरेबार सब हाल कह सुनाया और कहा:—  
“युवराज ! विशाल राज्य का भार मेरे बड़े भाई पर है, उन पर विपत्ति आवे और मैं चुप बैठा रहूँ, यह कैसे हो सकता है ? खुरासानी और मुलतानी दोनों को मैंने ही मारा है” भाई के घोड़े के मरने पर अपना घोड़ा, मैंने उन्हें दे दिया और खुरासानी के घोड़े पर मैं आया हूँ” ।

यह सुनकर सलीम थोड़ी देर चुप रहा पीछे उसने अपनी प्रतिज्ञा स्मरण करके कहा:—“अच्छा ! आप का सब अपराध क्षमा किया, पर आज मुगल सेना को छोड़ जाइयेगा ।

यह सुनकर शक्तसिंह बड़े प्रसन्न हुये, उन्होंने तत्काल ही मुगल शिविर का परित्याग किया। भाई से अनबन होने के कारण उन्हें देशद्रोहिता का कलङ्क अपने मथे लेना पड़ा था। बहुत दिन पीछे उनका उस कलङ्क से छुटकारा हुआ। मिलते समय भाई को कुछ नज़र देने की इच्छा से मैसरीर गढ़ पर आक्रमण किया, और जीत कर अपने भाई की भेट कर दिया। मैसरीर गढ़ बहुत दिन तक शक्तवर्तों का स्थान रहा है। प्रताप ने भाई के इस व्यवहार से सन्तुष्ट हो कर वह स्थान बारम्बार के लिये उन्हें दे दिया।

राजमाता पुत्र शक्तसिंह को ही बहुत प्यार करती थीं। इस लिये वे भी वहीँ जाकर रहीं। इसलिये अब भी शक्तसिंह के वंशधरों की माताएँ “बाई जी महाराज” कहलाती हैं। शक्तसिंह के आ जाने से प्रतापसिंह का और भी बल बढ़ा। बल्लभ की याद शक्तवर्तों की भी धीरेन्द्र समाज में परिगणना



---

हुई। शक्तसिंह ने खुरासानी और मुलतानी सिपाहियों को मार कर प्रताप की रक्षा की थी, इसलिये उनके वंशधर अब तक खुरासानी, मुलतानी के आर्गल अर्थात् खुरासानी मुलतानी को रोकने वाले कहलाते हैं।



# पन्द्रहवाँ परिच्छेद

## महासङ्कट

“बड़े लहत सुख सम्पदा, बड़े सहत दुःख दुम्ह ।  
उडुगण घटत न बढ़त कहुं, बढ़त घटत नित चन्द ॥”  
“बड़े तजत नहि नीति पथ, यदपि प्राण तजि देत ।  
भूखा रहत मृगेन्द्र तउ, तृण न कबहुं मुख लेत ॥”

हल्दीघाटी के युद्ध की समाप्ति हो चुकी चौदह हजार राजपूत वीर हल्दीघाटी की रक्षा के लिये प्रसन्न मुख किसी प्रकार का सङ्कोच न करके अपने जीवन को न्यौछावर करके स्वर्ग को सिधार गये । हल्दीघाटी राजपूत वीरों के रुधिर के सोतों से धुल गई । हल्दीघाटी युद्ध का परम पवित्र क्षेत्र है इस युद्ध की कथा कवियों की रसमयी कविता द्वारा स्मरणीय रहेगी । इतिहास लिखनेवालों की पक्षपात रहित पवित्र लेखनी सुवर्ण अक्षरों में इस कथा को लिखेगी अमृतकाल तक वीरेन्द्र समाज में महाराणा प्रतापसिंह का नाम उच्च रहेगा । परन्तु हाय ! वीरेन्द्र प्रताप के कण्ठों का ठिकाना न था । मानो बादशाह के साथ ही साथ संसार की सुख सम्पदा सभी उनसे रुठ गई । उस समय वीर शिरोमणि प्रताप के दुःख का ठिकाना न रहा ।

वर्षाश्रु के आरम्भ में हल्दीघाटी का युद्ध हुआ था । वर्षा ने अपना भयङ्कर रूप धारण किया । लगातार की वर्षा में बादशाही सेना का नाकों दम कर दिया पर्वत के भास पास गड़ी नाँले भरने लगे, बादशाही लश्कर में बहुत से लोग बीमार पड़ने लगे । विजयोम्मल मुगल सेना का सारा उम्माद



उत्तर गया। सलीम ने वहाँ की ऐसी स्थिति देखकर वहाँ से अपना डेरा हटा लिया। प्रताप को कुछ दिनों के लिये अवकाश मिला। परन्तु वसन्तऋतु आते ही सब रास्ते साफ हो गये। मार्ग में किसी प्रकार की रुकावट न देखकर मुगल सेना फिर आ पहुँची। प्रतापसिंह ने फिर अपने वीरों को इकट्ठा किया। माघ सुदी ७ सम्बत् १६३३ को मेवाड़ की स्वाधीनता का पुनः युद्ध हुआ असंख्य मुगल सैनिक सब प्रकार की तैयारी करके राजपूत जाति की मान मर्यादा और गौरव को धूल मिट्टी में मिलाने के लिये इकट्ठे हुए। मुगल सेना सब तरह से तैयार थी उनके पास किसी प्रकार के सामान की कमी नहीं थी। परन्तु वेचारे राजपूतों के पास क्या था, केवल उनके प्राण हार्दिक उत्साह अथवा आत्मिकबल था इन्ने गिने अपने थोड़े से वीरों को लेकर प्रताप मुगल सेना से भिड़ ही गये। परन्तु थोड़े से राजपूत अपनी तलवारों के बल से कहां तक विशाल मुगल सेना का सामना करते। बहुत वीरता दिखलाने पर भी विजय लक्ष्मी राजपूतों से प्रसन्न नहीं हुई राजपूत वीरों ने कुम्भलमेर के किले में जाकर आश्रय लिया।

मुगल सेना ने भी राजपूतों का पीछा किया, मुगल सेना के सेनापति शहबाज खां ने उस किले को घेर लिया। प्रताप ने बहुत कुछ आत्मरक्षा की, परन्तु भाग्य देवता सब तरह से उनके प्रतिकूल थे। गर्मी के दिन थे। राजपूत वीर किले में घिरे हुये थे। रसद की कमी थी पानों का अत्यन्त कष्ट था। जहाँ जहाँ होने से वहाँ पानी का अभाव था गर्मी के दिनों में पानी का अभाव असहनीय हो जाता है। अन्न पानी की राजपूत वीरों को असहनीय वेदना हो रही थी। कुम्भलमेर दुर्ग में "तिगुप्त" नामक एक कुआँ था। राजपूत वीर केवल किले के कुएँ के जल से ही अपनी प्यास बुझाते थे। परन्तु उस



समय ऐसे देशद्रोही कुलाङ्गारों की कमी नहीं थी जो अपने राजपूत भाइयों के खून को चूसने में ही अपना बहुष्पन समझते थे। ऐसे ही जातिद्रोही देश विद्वेषियों में आबू के देवर अधिकारी थे। इस देश द्रोही आबू के अधिकारी की घृणित कार्रवाई के कारण राजपूत वीरों को भयङ्कर संकष्ट का सामना करना पड़ा। आबू के देवर के अधिकारी को जब देश द्रोहिता के लिये और कुछ न सूझ पड़ा तो उसने प्रताप की बेटी मुगलों को कुएं का हाल बतलाया मुगलों ने किसी ढङ्ग से कुएं का जल ही खराब कर दिया। जल के खराब और जहरीले होने के कारण प्रताप और उनके साथियों को विशेष कष्ट होने लगा। बहुत से जहरीले जल के पीने के कारण मृत्यु के प्रास होने लगे। अब प्रताप को किले के खाली करने के अतिरिक्त और कुछ उपाय नहीं रहा उन्होंने शोणिगुरु सरदार को दुर्ग की रक्षा का भार सौंपा। बहुत से राजपूत वीरों के साथ उन्होंने उस किले को खाली कर दिया। वहां से प्रताप चोद नामक पहाड़ी किले में गये।

शोणिगुरु सरदार ने अभूत पूर्व साहस से मुगल सेना का सामना किया। उसने इसकी बहुत चेष्टा की कि मुगल सेना चोद तक पहुंचने न पावे, परन्तु उस वीर की चेष्टा सफल नहीं हुई और वह युद्ध में तलशायी हुआ। शोणिगुरु सरदार के मरने से मेवाड़ का एक प्रधान महाकवि उठ खड़ा। जिसकी कविता, कामिनी ने मेवाड़ में विद्युत्शक्ति का प्रादुर्भाव कर दिया था, जिसकी कविता के सुनते ही मेवाड़ की लियों और कंधों तक की नसों में स्वदेश रक्षा का खून बहने लगा मर्कट पर्वत के शिखर सुनकर, मेवाड़ के वीर विशाल मुगल सेना का हल्ला सुनकर न करके अपने देश की रक्षा के लिये प्राण देने का फैसला करके मेवाड़ की ओर बढ़े। शोणिगुरु इस युद्ध में अपनी



देशवासियों को रलाकर चलते बने। किन्तु इतने पर भी मेवाड़ की धीर मण्डली का उत्साह नहीं घटा। राजपूतों का प्रधान आश्रयस्थल कुम्भलमेरु मुगलों के हाथ में चला गया सही परन्तु धीर धीर प्रतापसिंह आश्रय हीन नहीं हुये। वे अपने व्रत से टले नहीं।

ऊपर कहा जा चुका है। कि कुम्भलमेरु छोड़ने पर प्रताप ने चौद नामक स्थान में आश्रय लिया था। मेवाड़ के दक्षिण पश्चिम भाग में चम्पन नामक प्रदेश है। उस स्थान में बहुत से पहाड़ हैं, उसमें कोई साढ़े तीन सौ छोटी छोटी बस्तियां हैं। इन सब बस्तियों में भील बसते हैं उस प्रदेश में ही चौद नामक बस्ती पहाड़ पर है। प्रताप वहीं रहने लगे।

प्रताप की प्रतिज्ञा थी कि चाहे जो कुछ हो पर मुगल सम्राट अकबर के सामने अपना माथा नहीं झुकाऊंगा। उधर अकबर भी इस कठोर प्रतिज्ञा को धारण किये हुये था कि चाहे जो कुछ हो प्रताप को अपनी वश्यता स्वीकार करके रहूंगा। अकबर अपनी इस प्रतिज्ञा को पूरी करने के लिये अनेक सेनापतियों के अधीन दल की दल फौज भेजने लगा यह फौज मेवाड़ के अनेक स्थानों में फैल गई। पहले युद्धों में ही प्रताप का धन बल जनबल सब कुछ नष्ट हो चुका था। परन्तु प्रताप अपनी प्रतिज्ञा नहीं भूले। वे मुट्ठी भर राजपूतों को लेकर मुगल सेना का सामना करते थे। जब प्रताप एक स्थान की रक्षा करते थे। तब दूसरा स्थान मुगलों के हाथ में चला जाता था। मुगलों की ओर से राजा मानसिंह ने धरमेति और गोलकुण्डा नामक किलों पर अधिकार कर लिया। मुख्यतः वे राजधानी उदयपुर अपने हस्तगत कर ली। पर तब भी प्रताप पर से विपत्तियां दूर नहीं हुईं।



अमीशाह नामक व्यक्ति ने चौंद और अगुण फौज को भीलों और प्रताप के बीच में जो सम्बन्ध था वह तोड़ दिया । वहाँ से प्रताप को जो रसद आती थी, वह भी बन्द होगई । ऐसे महा-सङ्कट के समय में फरीदखां नामक एक मुगल सेना-पति ने चम्पन पर आक्रमण किया और दक्षिण की ओर खैरमनः चौन्द की ओर कूँच करने लगा । प्रताप को वह स्थान भी छोड़ना पड़ा । मानसिंह मुहम्मद खां, फरीद खां और शाहबाज खां प्रभृति प्रधान २ मुगल सेनापतियों ने मेवाड़ भूमि को चारों ओर से घेर लिया ।

इस प्रकार चारों ओर से घिरने पर प्रताप बिल्कुल निस्सहाय होगये । उनको अपनी मातृभूमि मेवाड़ में स्वाधीनता पूर्वक विचरण करना भी असम्भव होगया । मेवाड़ेश्वर प्रताप की दशा दीन, हीन, मलीन मिखारी से गई बीती होगई । कहीं भी वे निश्चित रूप से नहीं बैठने पाते थे । वह अपनी सेना सहित कुछ राजपूत वीरों के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान में भटकते फिरते थे । उस समय उनके परिवार की रक्षा का भार भीलों ने लिया । कैसा कठिन समय था, कि महाराणा की महाराणी तथा उनकी सन्तान के लालन पालन का भार भीलों पर था । भील ही उनके भोजन की सामग्री लाते थे । दिन रात उनकी रक्षा (मुगलों के हाथ कहीं महाराणा का कुटुम्ब न पड़ जाय) करते थे । दुश्मनों के पास आ जाने के भय से भील लोग महाराणा के परिवार को झोलियों में ले जाकर गुफाओं में छिपाते थे कभी कभी लगातार आठ आठ दिन तक महाराणा प्रताप का अपने परिवार के

कई इतिहास लेखकों ने अमीशाह की सुतेकमान लिखा है और कुछ लेखकों ने राजपूतों की कृतकता है । —लेखक



लोगों से मिलना नहीं होता था। परन्तु फिर भी देशभक्त प्रताप अपनी प्रतिष्ठा पर अटल थे। प्रताप की ऐसी दशा देखकर, मुगल सेना के आनन्द की सीमा न रही।

ऐसे अनेक सङ्कटों के आजाने पर भी प्रताप निश्चिन्त नहीं थे। उनके राजपूत वीरों को जब कभी मौका मिलता था तब ही वे मुगल सेना पर टूट पड़ते थे। जिससे मुगल सेना की विशेष हानि होती थी। राजपूत वीर अचानक मुगल शिविर पर आक्रमण करके बादशाही सेना को छिन्न भिन्न कर देते थे मुगल सेना के योद्धाओं की रक्तधारा से अपनी मातृभूमि मेवाड़ का शरीर रङ्ग कर पहाड़ी कन्दराओं में विलीन हो जाते थे। जिससे मुगल सेना को भी कुछ न कुछ विपत्ति का सामना करना पड़ता था। इस तरह से मुगल सेना को सङ्कटों से सामना करना पड़ा। उसके एक सेनापति फरीद खां ने नबी की कसम, प्रतापसिंह को जीवित पकड़ने अथवा अपने हाथ से मार डालने की खाई "चौबे जी छब्बे होने गये थे फर रह गये दुबे" वही दशा फरीदखां की हुई उसे पीछे अपनी भूल बात हुई उसे मालूम हुआ कि नूर केसरी प्रताप को पकड़ना कोई खिलवाड़ नहीं है प्रताप के कौशल से फरीद खां एक पहाड़ी में घिर गया। राजपूत वीरों ने उसकी सारी सेना को काट डाला। केवल एक आदमी फरीद खां के पास बच रहा। उस समय महाराणा प्रताप चाहते तो फरीद खां को कैद कर लेते अथवा मार डालते परन्तु उदार हृदय महाराणा प्रतापसिंह ने फरीदखां के साथ जो व्यवहार किया वैसे व्यवहार के उदाहरण भारतवर्ष को छोड़ कर संसार के शायद अन्य देशों के किसी इतिहास में मिले, महाराणा ने उसके हथियार लेकर उसको छोड़ दिया।

मुगल सेना इस प्रकार युद्धों में सिपुण न थी, राजपूतों



के सामने वह निस्तेज और उत्साह हीन हुई, मुगल सेना की सब चालाकी और धीरता निष्फल हुई, प्रताप पकड़ने में नहीं आये। इतने में वर्षा ऋतु फिर आरम्भ हो गई, नदी माले बहने लगे इस कारण मुगल सेना अपनी छावनी को लौट गई, वीरेन्द्र प्रताप को वर्षा ऋतु आने के कारण फिर अवकाश का समय मिला।

इसी तरह से वर्षों बादशाह अकबर और महाराणा प्रताप में लड़ाई होती रही। हर वर्ष वर्षाऋतु में बादशाह की फौज लौट जाती थी और बसन्त में नये दल बल से आक्रमण करती थी। पर प्रताप का कठोर व्रत नहीं टूटा, उनकी प्रतिष्ठा अटल पर्वत के समान स्थिर रही। भीलों ने प्रताप के इस सङ्कट के समय स्वामिभक्ति का अपूर्व परिचय दिया। एक समय मुगलों के हाथ में प्रताप का परिवार पड़ा ही होता, परन्तु उनके सदा के विश्वासी मित्र भीलों ने रक्षा की उस बार कावा निवासी भीलों ने उनके परिवार के लोगों को बांस की टोकरियों में रखकर जाधरा की टिन की छानि में छिपाया था, प्रभुभक्त भील स्वयं भूखे रहते थे पर प्रताप के परिवार के लोगों को भूखा नहीं रहने देते थे, और रात दिन उनकी रक्षा किया करते थे। कई ताबिदियाँ के पीत जाने पर भी जाधरा और चौद के घने जंगलों में भीलों के उपकारों के चिन्ह आज भी मिलते हैं आज भी उन जंगलों में बड़े बड़े वृक्षों में लाहे के कड़े और बसंत्य कील दिखलायी पड़ती हैं। भील वीण राजपुत्र, राज मारियाँ को उन कील और कड़े पर बनेले पशु जन्तुओं से रक्षा करने के लिये रखा करते थे। जिस राज परिवार की एक दिन सुन्दर राजमहल में भी वृत्ति नहीं होती थी, उस राज परिवार की अवायों की तरह जंगलों में भीलों के आश्रय भूयना जीवन व्यतीत करना



पड़ा। परन्तु यह सब विपत्तियों के होते हुये भी प्रताप अपनी कठोर प्रतिष्ठा से टले नहीं। उनकी प्रतिष्ठा थी कि चाहे जो कुछ हो पर मुगल सम्राट अकबर के सामने अपना मस्तक नहीं झुकाऊँगा।

अकबर भी निश्चिन्त नहीं था, वह छुपे छुपे प्रताप की टोह लेता था। वह प्रताप की यह दशा देख कर चकित और स्तम्भित हुआ। वह प्रताप के ऐसे असाधारण स्वार्थत्याग और परम कष्ट में धीर भाव को देखकर अकबर का हृदय भी पिघल गया। वह छिपे छिपे प्रतापसिंह की दशा जानने की चेष्टा करता था। जब उनके यह सुना कि प्रताप के सरदारों को खाने के लिये थोड़े से फल फूल मिलते हैं, परन्तु उनका भी भोजन बे राजसी ठाट से करते हैं। ऐसे घोर सङ्कट में भी वे उसी मर्यादा का पालन करते हैं, जो वे सुख के समय करते थे जङ्गली फलों के दोने उनके हाथ से सहर्ष सरदार लोग लेते हैं। अकबर ने जिस समय यह हाल सुना, उस समय उसकी प्रताप पर अत्यन्त भक्ति हो गई। जो राजपूत गण प्रताप से शत्रुता करके अकबर के दरबार की शोभा बढ़ा रहे थे, वे भी महाराणा जी की सहायता करने लगे और अपने जी में अपने को धिक्कारने लगे। हिन्दू ही नहीं, अकबर के मुसलमान दरवारी भी महाराणा प्रतापसिंह की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते थे। और तो और मुगल सेना के सेनापति मिरजा खां "खानखाना" ने प्रतापसिंह के पास यह कविता भेजी थी:—

“अम रहसो रहसी घरा, खिस जासे खुरसाणा।

मेघादकी राख मेशखि में छि सा है:—सब बाइशाह मिर्जी खां के गोशुदा में छोड़ गये थे तब कुमार अमरसिंह मिर्जा खां की बेगमों की वकफ



“अमर बिम्बमर ऊपर, रखियो न हज्जी रूपा” ॥  
 इसका भाव्य यह है:—“हे राणा जी ! उस अमर जग-  
 दीश्वर पर बिश्वास रखियेगा, आप का धर्म और धरती दोनों  
 ही बने रहेंगे और बादशाह लज्जित होगा ।”

सही है, परन्तु महाराणा जी ने इनकी प्रतिष्ठा के साथ मिर्जा का के पास  
 जो कुछ शक्ति था, उसका उपयोग है, उसी पर प्रसन्न हो कर अपने महाराजा के  
 इससे अधिक कीर्ति भेजी है ।



# सालज्वाँ परिच्छेद

## कठोर परीक्षा

“सहे सबै दुःख नेकु न अपने प्रण तें भटके ।  
राज गयो धन गयो फिरे बन बन में भटके ॥  
पै हाय सहो जाती नहीं जीवत इन नयनन निरख ।  
इन दूध पीवते बालक, रोटी हित रोवते विलख ॥

श्रीराधाकृष्णदास

पाठक सुन चुके हैं कि उस समय प्रताप की दशा एक साधारण गृहस्थी से भी गयी होती थी । साधारण से साधारण गृहस्थ के पास जो कुछ होता है, वह भी प्रताप के नहीं था । चाहे जैसा विपत्ति प्रसूत क्यों न हो, उसके पास भी थोड़ा बहुत क्षुधा निवृत्ति के लिये होता है । पर प्रताप पास कुछ नहीं था । गृहस्थ की रात्रि में सोने का कहीं तो भी ठिकाना होता है, पर प्रताप के पास वह भी नहीं था राह, खलता हुआ एक भिखारी किसी पेड़ के तले निश्चिन्त होकर रात को सो तो भी लेता है, परन्तु प्रताप को कहीं सोने का भी ठिकाना नहीं था । न मालूम किस समय शत्रु आ जाय यह भय प्रताप को रात्रि दिन लगा रहता था । जब मुगल सैनिक गण किसी तरह भी प्रताप को नहीं पकड़ करके, सब प्रकार की चेष्टायें करके हार गये, पर प्रताप ने मुगल सम्राट अकबर की अधीनता स्वीकार नहीं की तब उन्होंने प्रताप के परिवार में से ही किसी को पकड़ कर उसको अपमानित करके ही अपना कलेजा ठंडा करने की ठानी । इस लिये मुगल सैनिक जब कभी अवसर देखते थे तब ही प्रताप के



परिवार को पकड़ने की चेष्टा करते थे, परन्तु प्रभु-भक्त भील किसी न किसी प्रकार प्रताप के परिवार की रक्षा करते थे। इस प्रकार प्रताप को प्राणों से अधिक प्यारे, स्त्री पुत्र आदि परिवार का कष्ट उनको कितनी ही बार प्राणाम्त पीड़ा देने लगा पर उन्होंने अपने कठोर प्रण के सामने इस प्राणाम्त पीड़ा की कुछ परवाह नहीं की।

एक दिन प्रतापसिंह की राजमहिषी ने पांच बार भोजन प्रस्तुत किया, परन्तु पांचों बार राजपरिवार को मुग़ल सैनिकों के कारण भोजन छोड़कर भागना पड़ा था। एक बार भी भोजन करने का समय नहीं मिला। पांचों बार प्रस्तुत किये हुए भोजन को छोड़ कर उन्हें पहाड़ों के दुर्गम स्थानों में जाना पड़ा किसी न किसी तरह से उस दिन मुग़ल सैनिकों से प्रताप के परिवार की रक्षा हुई। परन्तु तिस पर भी प्रताप अपने व्रत से डिगे नहीं।

मनुष्य सब कुछ सह सकता है। परन्तु सन्तान का कष्ट सहना कठिन है। दुधमुँहे कोमल अज्ञान बच्चों की घिल्लाहट कठोर से कठोर हृदय वाले व्यक्तियों के कलेजे को पिघला देती है। संसार में ऐसे कितने माता पिता हैं, जिनके बच्चे से कठोर हृदय को भी अपनी सन्तान के दुःख को देखकर न रौना पड़ा हो वीरेन्द्र प्रतापसिंह की भी ऐसीही कठोर परीक्षा का अवसर उपस्थित हुआ। कई दिन के घोर सजुट के पीछे एक दिन महाराणा प्रतापसिंह की राजमहिषी और पुत्र बधू ने “मल” नामक घास के बीजों की रोटियाँ बनाई थीं। रोटियाँ तैयार होने पर उपस्थित बालक, बालिकाओं को एक एक रोटी बाँट दी गई थी उस दिन और कुछ भोजन न था, बस वहाँ एक एक रोटी का सब को सहारा था, जहाँ यह रोटियाँ बँट रही थीं, वहाँ पास ही प्रताप बैठे हुए, अपनी



दशा और मेवाड़ के भाग्य के सम्बन्ध में विचार रहे थे। जिस समय इस तरह के विचार सागर में मग्न थे, कि यकायक अपनी छोटी लड़की के रोने की आवाज सुनकर चौंक पड़े देखा कि एक जङ्गली बिल्ली यकायक दूटकर लड़की की गोद से आधी रोटी छीन कर भाग गई इसी से बालिका हृदय विदारी रोदन कर रही है। वीरेन्द्र प्रताप इस दृश्य को देखकर कांप उठे। प्रतापसिंह ने प्रसन्नमुख से हल्दी घाटी रणस्थल में अपने देशवासियों की रुधिर की नदी बहती हुई देखी थी, उन्होंने प्रसन्न मन से देश के गौरव को बनाये रखने के लिये अपने भाइयों को उत्तेजित किया था। वे ही प्रताप बालिका को रोते देखकर कांप उठे, जो प्रताप अपने वीरव्रत पालन के लिये सहर्ष राजपाट, धन दौलत सभी की राष्ट्रीय यज्ञ में पूर्णाहुति देकर भी तनिक विचलित नहीं हुए, उन्हें प्रताप का बालिका के रोने से कलेजा फटने लगा। जो प्रताप अनेक आपत्तियों के आने पर भी अपने कठोर व्रत से नहीं हटे थे, वे ही प्रताप आज अपनी एक छोटी कन्या के रोने के कारण प्रतिज्ञा भङ्ग करने को तैयार हुये। कन्या के रोने के साथ ही साथ महाराणा की आंखों से भी अभ्रधारा बहने लगी, प्रशान्त सागर में अशान्ति रूपी लहरें उठने लगीं। भागवान् सूर्य की गति बदल गई गिरराज हिमालय कन्दरा में धंस गया। प्रतापसिंह आखिर मनुष्य ही तो थे उनका हृदय कोमल बालिका के दुःख को सहन नहीं कर सका, “हाय ! छोटे २ बच्चे तक मेरे कारण इतना दुःख पावे” फिर इस प्रतिज्ञा को लेकर क्या करूंगा ? यही विचार उनके हृदय के अन्दर उठने लगा। वह इकाय हृदय से कहने लगे:—“बस अब सहा नहीं जाता यथेष्ट हुआ।” यह कह कर वे अकबर से सन्धि करने को तैयार हुये।” सरदारों ने हाथ जोड़कर महारणा से इस



प्रस्ताव के विरुद्ध प्रार्थना की, राजमहिषी ने प्राणेश्वर को इस प्रस्ताव के विपरीत बहुत कुछ समझाया, बुझाया पर कोई भी तर्क, कोई भी युक्ति महाराणा के हृदय समुद्र की गति रोकने के लिये तैयार नहीं हुई। उन्होंने अकबर से सब लोगों के मने करने पर भी सन्धि की प्रार्थना कर ही तो दी। पक्ष लेकर दूत को अकबर के पास रवाना कर दिया।

अनेक विद्वान्, विचारशील सज्जन कह उठेंगे कि प्रताप के चरित्र में यह दुर्बलता थी वे लोग भले ही इस घटना को लेकर प्रताप के चरित्र में दुर्बलता का कलङ्क थोपा करें परन्तु यह दुर्बलता नहीं है प्रताप लाख घोर होने पर भी मनुष्य ही तो थे न? मनुष्य होने के कारण वे मनुष्य स्वभाव से कैसे बच सकते थे? फिर प्रताप के चरित्र में दुर्बलता क्यों बतलाई जाय? इस घटना को क्यों दोष दिया जाय? कौन सा माई का लाल ऐसा है जिसका पत्थर का कलेजा ऐसे अवसर पर न पसीजता वह मनुष्य मनुष्य नहीं है, वह देवता है अथवा राक्षस, या दानव है। हम तो समझते हैं कि ऐसे अवसर पर देवगण भी धैर्य और कर्तव्य से च्युत हो जाते हैं, बड़े प्राण सहारी राक्षसों को भी देखा गया है कि उन्हें बड़े बड़े हत्याकाण्ड करने पर भी दया नहीं आई पर सन्तान की थोड़ी सी दुःख को देखकर उनका हृदय भी पसीज गया। सन्तान की दारुण वेदना देखकर कौन ऐसा व्यक्ति है जिसके हृदय में कठिना उत्पन्न न होती हो? कठोरता और कोमलता दोनों ही हृदय के महत्व के सूचक हैं। कर्तव्य पालन करने में प्रताप का हृदय जितना कठोर था, उतना ही दूसरों की विपत्ति में कोमल था। वही कारण था कि बड़े बड़े सङ्कट में फँस कर अनेक लोग मर जाते थे पर भी जो प्रताप अपने मत पालन से हटे नहीं। वही प्रताप एक बालिका के दारुण रुदन को सहन करने में



समर्थ नहीं हुये । अकबर का समस्त कौशल, समस्त शक्ति अपनी अधीनता के पाश में जिन प्रताप को जकड़ने के लिये व्यर्थ हुये, वे ही कठोर ब्रती प्रताप आज एक बालिका के साधारण बिलाप के कारण अपनी स्वतन्त्रता बेचने को तैयार हुये हैं । अपने सरदारों के, राजमंत्रियों के, आत्मीय जनों के प्राण प्यारे युवराज अमरसिंह के, यहां तक कि अपनी हृदयेश्वरी के समझाने से भी अकबर की अधीनता स्वीकार करने का सङ्कल्प परित्याग नहीं किया । क्या संसार में कोई ऐसी शक्ति नहीं है, जो इस समय प्रताप को डूबती हुई नैया को पार लगावे ? देखे, बीच भ्रमधार में से कौन सा खेवट प्रताप की नैया को उबारता है ?



# सत्र जवाँ परिच्छेद

## पृथ्वीराज का पत्र

शुप रहन हू नहिं जोग अब देश हित विपति प्रताप परघो ।  
तासों बचावन प्रियहि अब हम देह निज विक्रम करघो ।  
प्रताप की अधीनता का समाचार लेकर दूत अकबर के दरबार में पहुंचा । दूत के आते ही अकबर की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा । लगातार कई वर्ष से जिस प्रताप के कारण अकबर का नाकों दम था । जिस प्रताप को अधीन करने में अकबर को धन और जन दोनों की बहुत सी क्षति भेलनी पड़ी थी, वही प्रताप बिना किसी दिक्कत के अकबर के अधीन होना चाहता है । तब क्यों न खुशी हो ? प्रताप के सन्धि आधीनता विषयक प्रस्ताव के कारण सारा शाही दरबार आनन्द में गूंज उठा । सम्राट अकबर के आनन्द का तो पूछना ही क्या था ? अकबर मेवाड़ का राज वा राजछत्र नहीं चाहता था, वह चाहता था कि एक बार प्रताप सिर झुकावे तो सब काम बन जावे । बस प्रताप के दूत के आने से अकबर की वह हार्दिक लालसा पूर्ण हुई । प्रताप के सन्धि विषयक प्रस्ताव के पहुंचते ही राजधानी में चारों ओर आनन्दोत्सव होने लगा, पर यह किसी ने नहीं सोचा कि परमेश्वर की यह मंजूर नहीं है कि प्रताप भी अन्य राजपूतों की तरह

सूल कविता यह है—

शुप रहन हू नहिं जोग अब मम हित विपति बन्दन परघो ।  
तासों बचावन प्रियहि, अब हम देह निज विक्रम करघो ॥

( मुद्राराक्षस )



अकबर के चरणों में मस्तक झुकाकर इस संसार से राजपूत जाति का नाम निशान मिटा दे। आनन्द का यह स्रोत बहुत दिन तक ठहरने वाला नहीं है। मझधार में प्रताप की अटकी नाव को उबारने वाला भी कोई इस राजधानी में, नहीं नहीं खास शाही दरबार में ही कोई है ?

प्रताप के पत्र को पाकर अकबर बहुत ही प्रसन्न हुये, उन्होंने बारी बारी से वह पत्र अपने सब ही दरबारियों को दिखलाया। अकबर ने वह पत्र बीकानेर के राजा के छोटे भाई पृथ्वीराज को भी दिखलाया। यह हम पहले कह चुके हैं कि पृथ्वीराज अकबर के यहां राजनैतिक बन्दी अवश्य थे, पर उन्होंने अपना हृदय अकबर को नहीं बेचा था। अकबर के दरबार में उनके समान कोई भी स्वदेश भक्त और स्वजाति हितैषी नहीं था। प्रताप का पत्र अकबर के दिखलाने पर उन्हें आन्तरिक वेदना हुई वह महाराणा प्रताप में बड़ी श्रद्धा और भक्ति रखते थे, इससे उन्हें महाराणा का पत्र देखकर अत्यन्त दुःख हुआ। प्रथम तो उन्होंने प्रतापसिंह के पत्र का विश्वास ही नहीं किया फिर विश्वास हो जाने पर उन्होंने बादशाह से कहा:—जहाँ पनाह ! यह पत्र जाली है, मैं प्रताप को भली भांति जानता हूं वे कभी भी अधीनता स्वीकार करने वाले नहीं हैं। वे आपका राजमुकुट पा जाने पर भी आपके मन मुताबिक सन्धि मानने को तैयार नहीं होंगे, सम्भव है, प्रताप के किसी शत्रु ने यह पत्र भेजा है”। इसके पीछे उन्होंने अकबर से अनुमति लेकर प्रताप के पास एक चिट्ठी भेजी, उन्होंने अकबर से चिट्ठी भेजने का कारण, असली घटना का पता लगाने का बतलाया था किन्तु उनका भीतरी अभिप्राय यही था कि किसी तरह से प्रताप अकबर की अधीनता स्वीकार न करें। पृथ्वीराज जैसे देशभक्त थे



वैसे ही बड़े भारी कवि थे उन्होंने महाराणा प्रताप के पास भाषा में ओजस्विनी नस २ फड़कामे वाली कविता भेजी, जिसका आशय यह है हिन्दुओं का आशा भरोसा सब कुछ हिन्दू जाति पर ही है महाराणा इस समय उस स्वकीय त्याग देते हैं। राजपूत जाति आज रसातल को जा चुकी है हमारे राजपूत वीरों में आज वीरता नहीं रही। हमारी देवियों में सतीत्व का भाव नहीं रहा। राजपूत जाति का सभी सम्मान आज समाप्त हो चुका। यदि प्रतापसिंह न होते तो आज अकबर भी गुड़ सभी को एक भाव खरीद लेते। यदि प्रतापसिंह

ॐ पृथ्वीराज के पत्र की असली नकल इस समय मिलती नहीं है कई ग्रंथकारों ने चेष्टा की परन्तु किसी को उपलब्ध नहीं हो सकी है जो कुछ पद्य प्रचलित हैं उसकी नकल नीचे दी जाती है।

सोरठा—अकबर घोर अंधार जंघाण हिन्दू अबर,

जागे जगदातार पोहरे राणा प्रताप सी ॥ २ ॥

अकवारिषे हणवार दागिल की सरी दूनी

अण दागिल असवार गेतक राणा प्रताप सी ।

अकबर समद अथाह सुरायण भरियो सुजब ।

मेवाडो तिणमाह पोयण फूल प्रताप सी ॥ ३ ॥

आइहो अकबर याही तेजो तिहारो तुरकड़ा ।

नमि नमि नसिर याह राण बिना सहराजवी ॥ ४ ॥

चौथो चौथो डाह बांटी बाजंती तणू ।

दोसे मेवाडाह मोशिर राणा प्रताप सी ॥ ५ ॥

बीहा—जनमीसुत अहड़ा जणे जहडो राणा प्रताप ।

अकबर छूती ही औधकै जागा शिराय साप ॥ ६ ॥

सोरठा—पाताक पाथ प्रमाण साखी सांगा हरतणी ।

रही अभोगत राण अकबर स्र बामो अणी ॥ ७ ॥

सोचै सह संसार असुर बलोजे बने ।

सोचै सह संसार असुर बलोजे बने ।



मं हीते तो अकबर सभी को एक पथ के पथिक बना डालते हमारी जाति में अकबर एक व्यापारी हैं, उन्होंने सब को ही खरीद लिया है, केवल अमूल्य रत्न उदयकुमार (पृतापसिंह) बाकी है। अकबर केवल उदयसिंह के शूरवीर पुत्र का मूल्य नहीं चुका सके हैं। मेवाड़ की गोद में पृताप का सां शूरवीर पुत्र न होने से आज मुंगल सम्राट अकबर की कुटिल नीति से सब राजपूत एक हो जावेंगे। सबों ने ही धीरज खाकर # नौरोज़ के बाजार में अपना अपमान देखा है। केवल हमीर के वंशधरों को ही आज तक यह अपमान नहीं देखना पड़ा है। क्या कभी हमीर के वंशधर भी अपने जातीय मान को इस बाजार में बेचेंगे। राणा का राज्य राजधानी तथा सब कुछ नष्ट हो चुका है परन्तु उनके पास केवल अमूल्य रत्न बाकी है। वह अमूल्य धन उनका जातीय मान और धर्म है अथवा यही पूछता है कि पृताप के पास धर्म रक्षा का कौन सा सहारा है? किसका भरोसा है यही उत्तर मिलाता है कि "पुरुषार्थ और तलवार का"। महाराणा केवल अपनी तलवार के सहारे से ही क्षत्रियों के गौरव की रक्षा कर रहे हैं बाजार का यह खरीदार कुछ सदा जीता न रहेगा। एक दिन अवश्य जाति बाजार के इस खरीदार को ठगा जाना पड़ेगा। एक दिन अवश्य ही वह इस लोक से चल बसेगा। उस दिन सब ही, छुटी हुई जन्मभूमि में राजपूत बीज बोने के लिये महाराणा के पास पहुँचेंगे। तब ही इस बीज की रक्षा होगी। तब ही राजपूतों की वीरता दूसरी बार उज्ज्वल होगी। इस लिये सब ही महाराणा की ओर टक टकी लगाये ताक रहे हैं।

नौरोज़ का रहस्य नवां परिकल्प में नौरोज़ा और अबला के आत्मिक बल शीर्षक में देखो। लेखक



पृथ्वीराज के उपर्युक्त उत्साह जनक वाक्यों से राजपूत जाति में एक बिजली सी दौड़ गई, प्रताप और उनके साथियों में नये सिर से दुगना बल आया। बादशाह को सम्विषयक पत्र लिखकर प्रताप को कठोर मानसिक वेदना हुई थी, पृथ्वीराज के पत्र से उनकी वही दारुण वेदना दूर हुई। वे फिर वीर अत पालन करने को समर्थ हुए। पृथ्वीराज के पत्र ने मझगार में पहुंची हुई, महाराणा प्रतापसिंह की नांघ को किनारे लगाया। धन्य है वह देश जहां पृथ्वीराज सरीखे कवि हों, यदि पृथ्वीराज न होते तो न मालूम उस समय राणा प्रताप की कौन गति होती राजपूत जाति के इतिहास में, भारतवर्ष के राष्ट्रीय इतिहास में पृथ्वीराज का पत्र सदैव स्मरणीय रहेगा। जिस कविता कामिनी ने प्रतापसिंह जैसे वीरेन्द्र के हृदय को सान्त्वना और शान्ति दी, वह कविता कामिनी सदैव भारतवर्ष के इतिहास में स्मरणीय रहेगी पृथ्वीराज जैसे कवियों का जीवन सफल है। वह कवि ही क्या, जो अपने डूबते हुए देश और जाति को उठा न सकता हो, तभी तो विलायत के प्रसिद्ध विद्वान् 'तॉल्स्टॉय' को अपने "हीरोएण्ड हीरो वरशिप" ( वीर और वीरपूजा ) नामक ग्रंथ में कहना पड़ा है कि इटली डान्टे जैसे कवियों के होने से उस की अपेक्षा विशेष सौभाग्यशाली है, जिस के पास कउजाक सवार हैं। एक कविता में एक सेना से कहीं अधिक बल होता है, पर वह कविता हो, तब न ? स्मरण रखो ! किसी अङ्गरेज कवि की एकाध, दो किताबों के मलुबाव कसों से ही कोई कवि नहीं हो सकता है। जिसके हृदय है, वही कवि है हिन्दी अंसार में आज कितने कवि हैं, जिनके हृदय हो। वे एकाध, दो किताबों के मलुबाव कसों से ही कवि बनकर फूल उठते हैं। उनसे हमारा मतलब है कि वे कवि



बार यूनान के होमर कवि की बात बिचारें तो सही, यूनान का कवि होमर था तो अंधा पर अन्धे होने पर भी उसके हृदय के कपाट खुले हुये थे तब तो वह अन्धा होने पर भी यूनान में घर घर भीख मांगता हुआ अपनी कविता से अपने स्वदेश भाइयों में जागृति फैलाता था। कहो तो सही ? तुममें ऐसे कितने कवि हैं ? प्रतिध्वनि फिर पूछती है कि आज होमर जैसे हिन्दी संसार में कितने कवि हैं ? किसी अङ्गरेजी कवि के एकाध ग्रंथ का टूटा फूटा अनुवाद भले ही कर लो पर भाई ! सच्चा कवि होना बहुत दूर है ।



# अ. १२ राहवाँ परिच्छेद

## भामासाह की अपूर्व सहायता

“जी धन के हित नारि तजै, पति पूत तजै प्रियु सो कहि सोई ।  
भाई सौ भाई लरै रिपु से पुनि मित्रता मित्र तजै दुख जोई ॥  
ता धन की बनियां हैं, गिन्यौ न दियो दुख देश से आरत होई ॥  
स्वार्थ अर्थ तुम्हारे ई है, तुमरे सम और न या अग सोई” ॥

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

पृथ्वीराज के पत्र को पाकर प्रताप उत्साहित हुये, वे दुगुने उत्साह से अपनी पूर्व प्रतिष्ठा को स्थिर रखने के लिये उद्यत हुये । उन्होंने मुगल सम्राट् अकबर की अधीनता स्वीकार न करने के लिये पुनः प्रतिष्ठा को परन्तु यह सब कुछ होने पर भी प्रताप के पास उस समय अपनी प्रतिष्ठा को पूर्ण करने को क्या रक्खा हुआ था ? लगातार अठारह वर्ष के युद्ध के कारण वे धन बल, जन बल सब तरह से क्षीण हो चुके थे ? प्रबल शत्रु, मुगल सम्राट् अकबर से लड़ते लड़ते उनकी सारी शक्ति नष्ट हो चुकी थी, अकबर को भी इन लगातार युद्धों में थोड़ी, बहुत अवश्य हानि सहन करनी पड़ी परन्तु फिर भी अकबर को बहुत सा सहारा था । उसका राज्य धन धान्य परिपूर्ण था, उसके राजकोष में उनका अभाव न था, अकबर की सेना को चित्तौड़ पहुंचते समय जो हानि सहन करनी पड़ती थी वह राजधानी दिल्ली पहुंच जाने पर पूर्ण हो जाती थी, परन्तु प्रताप के पास कुछ नहीं था, उनकी अकबर से भिन्न दशा थी । मेवाड़ के वे राजराजेश्वर, नरनाथ, दीन हीन पथ के भिक्षारी

ॐ सूक्त कविता में देश के स्थान में 'भीत शम्भु' है ।



बने हुये थे। उनको दोनों समय सूखी रोटी खाने को और रात्रि में आराम से सोने को भी कहीं ठिकाना न था, बहुत से उनके साथी वीर रणस्थल में मेवाड़ की रक्षा के लिये सदैव को सो गये। बहुत से सैनिक साथ छोड़ कर चलते बने, उनके साथ केवल वे इने गिने वीर थे, जिन्होंने चित्तौड़ के उद्धार की महाराणा के साथ कठोर प्रतिज्ञा की थी। धन हीन जनश्रीण प्रतापसिंह अपने बैरी का मुकाबिला किस तरह से कर सकते थे ?

महाराणा अपनी जन्मभूमि की दुर्दशा के कारण दुःखी ही थे बहुत सोच विचार के पीछे उन्होंने निश्चय किया कि जब राजधानी चित्तौड़ का परित्याग कर दिया, तब जन्म भर के लिये मेवाड़ भूमि को ही छोड़ देना चाहिये। निश्चय हुआ कि अर्बली पर्वत पार करके सिन्ध नदी के किनारे सोगदी राज्य में जाकर बसें। वहां मेवाड़ का झण्डा गाड़ें। बस यह निश्चय करते ही उन्होंने अपने गुप्तचरों द्वारा खास खास सरदारों को खबर भेज दी, इस खबर को पाते ही दूर दूर से राजपूत गण प्रतापसिंह की रक्त पताका के नीचे इकट्ठे होने लगे। यात्रा की सबही आवश्यक तैयारियां हो चुकीं, मातृभूमि को अन्तिम प्रणाम करने का समय आ पहुंचा।

प्रतापसिंह अपनी स्त्री, पुत्र, पुत्रियां और कुछ सरदारों के साथ अर्बली पर्वत की चोटी पर चढ़े, वहां से उन्होंने अपने प्यारे चित्तौड़ का दर्शन किया, चित्तौड़ को देखते ही उनके हृदय में अनेक प्रकार की भावनाएं उठने लगीं। हृदय से शोकभरी लम्बी स्वांसें खींचने लगे, उस समय उनके हृदय में निराशा की तरङ्गें उठ रही थीं वे सोचने लगे कि इस जन्म में मातृभूमि मेवाड़ का उद्धार न हो सकेगा। इस तरह से वे निराशा और चिन्ता से व्यथित हृदय होकर अर्बली



वर्षत से पार होकर माड़वाड़ भूमि में पहुँचे और अपनी जन्मभूमि को सर्वत्र के लिये प्रणाम किया। किन्तु ईश्वर की आज्ञा अपरम्पार है, मनुष्य का चाहा हुआ कुछ नहीं होता। उसकी गति कौन रोक सकता है, प्रताप को जो कुछ हुआ था, वह मेवाड़ भर के सब ही मनुष्यों को था। प्रताप अपनी मातृभूमि को केवल परमारों से मुक्त न कराने के कारण ही छोड़ने को तैयार हुए थे, तब कौन ऐसा अभाव था जो इस व्रत में सहायता न देता? मातृभूमि—किस की प्यारी नहीं होती। छोटी सी बनास नदी ने जिस प्रकार नाचते, कुदते, छुड़कते पुढ़कते अर्बली के पहाड़ी भाग की शोभा बढ़ा रखी है, वैसेही आत्मोत्सर्ग रूपी क्षीर धारा ने भी मेवाड़ के धीरों के कठोर व्रत को अमृतमय बना दिया है। आत्मोत्सर्ग करने वाले जिन महापुरुषों का नाम मेवाड़ के इतिहास में आता है, उनमें से एक भामासाह भी हैं। भामासाह प्रताप के सौथी थे।

जिस समय प्रताप तथा उनके कुछ साथी स्वजन तथा इष्ट-मित्रों से मिलकर चलने लगे उस समय मेवाड़ के प्राचीन मन्त्री भामासाह भी उनसे मिलने आये उस समय दीनभाव से प्रताप को स्वदेश परित्याग करते देखकर भामासाह का हृदय भर आया वह मन्त्री प्रघर अपने स्वामी की हीन दशा देखकर रोने लगा उसने अपने स्वामी को मेवाड़ के राज-सिंहासन पर पुनः प्रतिष्ठित करने के लिये अलौकिक आत्मोत्सर्ग का परिचय दिया। उसने न केवल अपने समय का ही उपार्जित धन किन्तु अपने पूर्व पुरखों का समस्त सञ्चय सब अपने स्वामी मेवाड़ेश्वर के पद-पङ्कज पर रख दिया। और विनती की कि नाथ! आप इस देशको छोड़कर न जाय, इस देश का उद्धार कीजिये। प्रताप और उनके परिवार



भामासाह का यह कृत्य देखकर चकित और स्तम्भित हो गये, पृताप के साथियों के उदास चेहरे पर हंसी की रेखा दिखलाई पड़ने लगी। पृताप के शिविर में से “जयभामासाह की जय” ध्वनि से चारों दिशा गूँजने लगीं। उसी दिन से भामासाह मेवाड़ के उद्धार कर्ता कहलाये जाने लगे।

पृथ्वीराज के पत्र और भामासाह के अलौकिक आत्मोत्सर्ग ने मरी हुई राजपूत जाति के लिये सञ्जीवनी शक्ति का कार्य किया। जो राजपूत वीर निराश हो चुके थे। उनके हृदय में आशा का स्रोत बहने लगा। वीरेन्द्र पृताप का साहस पहले से और भी दुगुना हो गया। कहते हैं कि भामासाह का इतना धन था कि उससे पच्चीस हजार वीरों का बारह वर्ष तक निर्वाह अच्छी तरह से हो सकता था। भामासाह से धन की सहायता पाकर वीरेन्द्र पृताप फिर अपनी प्रतिष्ठा पूरी करने की चेष्टा करने लगे। धन के अभाव से जो सिपाही बिदा कर दिये गये थे। उनकी फिर बुलवाया गया युद्ध के लिये हथियार वगैरः सामग्री इकट्ठी की गई। राजपूत सेना के लिये नये घोड़े खरीदे गये। सेना की यह सब तय्यारी इतनी छिपाकर की गई कि मुगल सम्राट अकबर और उनकी सेना को इसका कुछ पता भी नहीं लगा।



# उन्ना : वां परिच्छेद

## मेवाड़ विजय

“बलौ बलौ सब वीर आजु मेवार उबारैं ।

महो आज या पुण्य भूमि से शत्रु निकारैं ॥

चिर स्वतन्त्र यह भूमि यवन कर सों उधारैं ।

हिन्दू नामहिं थापि धर्म अरिगतहिं पछारैं ॥

नम मेदि आजु मेवाड़ पै उड़ै शिशोदिया कुल ध्वजा ।

जा शीतल छाया तरे रहै सदा सुख सों पूजा ॥

श्री राधाकृष्ण-स

सेना का सब सामान इकट्ठा करके पूताप स्वदेश उद्धार के लिये चले । इस वार वीरेन्द्र पूताप ने एक और भी कठोर प्रतिज्ञा की । उनकी प्रतिज्ञा थी कि यदि देश का उद्धार नहीं कर सकेंगे तो आत्मघात, करके अपनी जीवन लीला समाप्त कर देंगे । इधर पूताप की ऐसी कठोर प्रतिज्ञा थी उधर मुग़ल शाह जहाँ देवीर नामक स्थान में पड़ाव डाले हुए था । वह राजपूतों की ओर से बिलकुल निश्चिन्त था । वह महाराणा का मेवाड़ छोड़ कर जाना सुनकर अनेक प्रकार के मनमोदक बांध रहा था । वह समझे हुये था कि उसका मार्ग बिलकुल कांटों से साफ़ होजावेगा । परन्तु थोड़ेही दिनों पीछे शाहबाज़ जहाँ को अपनी भूल ज्ञात हुई । एक दिन पूताप की सेना ने अकस्मात् शाहबाज़ जहाँ की सेना पर आक्रमण किया । मुग़ल सेना पूताप के आकांक्षक आक्रमण को सहन करने में समर्थ नहीं हो सकी, वह मैदान छोड़कर भाग गई । जिस तरह से हिमालय के शिखर से निकलती गंगा जी का ऊपर ले जाना असम्भव है



वैसे ही उस समय राजपूत बीरों का उत्साह रोकना असम्भव था। राजपूत बीरों ने भागते हुए मुगल सैनिकों का पीछा किया और मुगल सेना को बिलकुल नष्ट कर दिया मुगल सेना प्रताप को दल बल सहित कैद करने की चेष्टा करने लगी पर प्रताप के सामने मुगल सेना की कुछ न चली। उनकी सेना ने मुसलमानों का पीछा आमेद तक किया राजपूत बीरों ने आमेद के मुसलमान गढ़-रक्षकों को काट डाला। पीछे कुम्भलमेर पर धावा मारा मुगल सेना यहाँ हार गई विजय लक्ष्मी ने राजपूत बीरों को वरमाल पहनाई। कुम्भलमेर किले का मुसलमान किलेदार अबदुल्लाखा भी मारा गया उसकी समस्त सेना मारी गई। सफलता उद्योग की दासी है। परमात्मा भी उसी की सहायता करते हैं जो अपनी सहायता आप करते हैं। राणा प्रताप का उद्योग सफल हुआ। थोड़े ही दिनों में ३२ किले उन्होंने मुसलमानों से छीन लिये एक वर्ष अर्थात् सन् १५८६ ई० के भीतर ही भीतर उन्होंने चित्तौड़ उदयपुर और मोड़लगढ़ को छोड़ सारा मेवाड़ अपने हस्तगत कर लिया। भाँवेर (जयपुर) के मानसिंह के घाणिज्य स्थल मालपुर को लूटकर उन्होंने मानसिंह को भी शिक्षा दी थी। एक समय प्रताप ने चित्तौड़ के उद्धार करने के कठिन व्रत में अपने देश भाइयों की बस्ती उजाड़ डाली थी, दूसरी बार अपने प्रबल शत्रुओं के खून में तलवार रङ्ग कर मेवाड़ भूमि शम्शान भूमि बना दी।

राजपूत बीरों के साहस और पराक्रम से घबड़ा कर मुसलमान सेना ने उदयपुर छोड़ देना ही गनीमत समझा। इससे उदयपुर भी प्रताप के हाथ लग गया। बादशाह अकबर को इस तरह अपने हाथ से मेवाड़ निकल जाने पर अत्यन्त शोक हुआ। फिर उसने मेवाड़ लेने की आज्ञा नहीं की कभी-



कि उस को मेवाड़ की पहली विजय ही बहुत महंगी पड़ी थी। कोई कोई इतिहास लेखक कहते हैं कि प्रताप का साहस वीरत्व और उद्योग देख कर अकबर का मन पिघल गया और भाँक में डूबकर वह उनको अधिक कष्ट न दे सका। हम ऐसे कहने वालों के साथ कदापि सहमत नहीं हो सकते हैं। भला जिस अकबर का हल्दीघाटी में चौदह हजार राजपूतों का रक्त बहते देखकर हृदय नहीं पिघला उसका अब हृदय क्यों पिघलने लगा ?। कोई भी विचारशील मनुष्य अकबर के हृदय पिघलने पर नहीं विश्वास कर सकता है। अकबर के हृदय पिघलने के विषय में कहना चण्डू खाने की गप्प से कुछ कम नहीं है। यदि थोड़ी दूर के लिये मान भी लें कि अकबर का हृदय पिघल भी गया था, तो अकबर का यह पिघलना वैसा ही था, जैसा इस यूरोपीयन महाभारत में रूस का पोलैण्ड को स्वराज्य देना है जब बड़े बड़े राष्ट्रों का कुछ बर्ष नहीं चलता है तब वे अपनी इज्जत आबरू रखने के लिये ऐसी ही लाचारी उदारता दिखाते हैं, जैसी इस समय रूस ने पोलैण्ड के प्रति दिखायी है। सम्भव है, अकबर की भाँक ऐसी ही नीति दूसरी बार में मेवाड़ पर आक्रमण करने से हो, कम से कम यह तो इतिहास के प्रत्येक निष्पक्षवादी

अकबर का हृदय पिघलना असम्भव था क्योंकि Badouni Vol, II, p. 240 में "तबकाते अकबरी" के आधार पर लिखा हुआ है। "इस समय मानसिंह के भोज, सुगुल सेना प्रताप का राज्य छूटना चाहता था पर मानसिंह ने मने कर दिया। इस पर अकबर ने कुछ दिना के लिये दरबार बंदी होक दी थी, Illiots History of India Vol. p. 40. में लिखा हुआ है कि मुसलमान सेनापति भाग्यशाली को भी इस तरह से बाइशाह का विजय प्राप्त हुआ था।



विद्यार्थी को मानना पड़ेगा कि लगातार के बाईस वर्ष के युद्ध ने अकबर की आंखे खोल दी थी कि मेवाड़ के राजपूत वीर सहज में ही मरने वाले नहीं हैं। मेवाड़ की विजय में उसकी शक्ति बहुत नष्ट होती है।



# बीसवाँ परिच्छेद

जीवन सन्ध्या और अन्तिम सन्देश

“राम राम कहि राम कह, राम राम कहि राम ।  
राम, राम रामहिं रटत, राव गये सुरधाम”।

तुलसीदास

\* \* \* \* \*

“जननी अरु जन्मभूमि को बड़ प्राणहु ते देख ।  
इनकी रक्षा के लिये प्राण न कछु अवरेख” ।

मेवाड़ का उद्धार हुआ उदयपुर भी हाथ में आगया पर चित्तौड़ का उद्धार न हो सका जिस चित्तौड़गढ़ उद्धार के लिये कठिन प्रतिज्ञा की थी उस चित्तौड़गढ़ से अभी तक मुसलमान दूर नहीं हुये । हाय ! जन्मभूमि चित्तौड़ अभी तक मुगलों के हस्तगत है । यह दारुण-वेदना महाराणा प्रतापसिंह की दूर न हुई । चित्तौड़ की दुर्दशा देखकर और उसके पूर्व गौरव को हमरण करके, प्रताप का मानसिक कष्ट दूर नहीं हुआ । अनेक आपदा, विपदाओं के झेलने और रातावन बिम्बा कपी सर्पिणी के उसने से उनका अन्तिम समय भान पड़ना संवत् १६५३ में प्रताप का अपूर्ण वय में ही देहान्त हो गया ।

इस संसार से खलते समय भी प्रताप के हृदय से चित्तौड़गढ़ की दुर्दशा दूर नहीं हुई उस समय उनके प्राण पखेरू की बड़ी कठोर वेदना हुई । उस समय राजर्षि प्रतापसिंह तृण की शय्या पर अपना कुटी में लेटे हुये थे उनके चारों ओर नामी नामी सरदार जमा थे, सब चुप काप थे, किसी के मुँह से एक शब्द भी नहीं निकलता था,



सभी व्यथित हृदय होकर महाराणा के अन्तिम दर्शन कर रहे थे। महाराणा का अन्तिम कष्ट देखकर चन्द्रावत् सरदार ने बड़े कोमल शब्दों में पूछा:—अधदाता जी! इस समय ऐसा कौन सा कष्ट है, जो श्रीमान को विश्राम नहीं करने देता। इस पर वीरेन्द्र प्रताप ने सदैव की भाँति उत्तर दिया:—मुग़लों के हाथ में मेवाड़ भूमि न जाने पावेगी, यह प्रतिज्ञा सुनने पर ही शान्ति के साथ प्राणत्याग करूँगा। इसके कुछ देर पीछे महाराणा प्रतापसिंह ने कहा:—पीछोला तालाब के किनारे पर विपत्ति के समय वर्षा और धूप से बचने के लिये कुछ भोपड़ियाँ बनाई गई थीं उनमें से एक दिन अमरसिंह बाहर निकल रहा था कि छप्पर के बांस में उसकी पगड़ी उलझ गई, इससे वह दुःखित और क्रोधित हुआ, इस बात को देखकर मैंने निश्चय कर लिया कि जन्म-भूमि की रक्षा के लिये, स्वदेश के गौरव को स्थिर रखने के लिये जो जो कष्ट सहन करने होते हैं उन्हें अमरसिंह सहन नहीं कर सकेंगे। इसके रहने के लिये सुन्दर बड़े बड़े महल चाहिये जब सुख पाने की इच्छा हुई, तब सुख में पड़कर कौन स्वदेश रक्षा कर सकता है! जिस मातृभूमि के गौरव की रक्षा के लिये, हमारे हजारों राजपूत वीरों ने रक्त बहाया था, वह मातृभूमि का गौरव यों ही विलीन हो जायगा। उस समय हाय! तुम लोग भी प्रण को भूलकर भोग बिलासता में फँस जाओगे तब कैसे शान्ति पूर्वक प्राणों का विसर्जन करूँगे।

यह कहकर राजर्षि प्रताप क्रोध और आवेश में आकर शय्या से उठ बैठे सरदारों ने विनय पूर्वक शय्या पर लिटाया लछूआ राख तथा सब सरदारों ने प्रतज्ञा की हम लोग बाण्वाराधल के राजसिंहासन को छूकर प्रतिज्ञा करते हैं



कि हम मेवाड़ के गौरव को नष्ट नहीं होने देंगे । जब तक समस्त मेवाड़ का उद्धार न होगा, जब तक सिंसीड़गढ़ पर सिंसीदिया बंजर की ध्वजा पता का न फहरायेगी तब तक कदापि हम इस स्थान पर महल नहीं बनने देंगे, । यह सुन कर घीरेन्द्र प्रताप ने बिरकाल के लिये शान्ति पूर्वक महा-निद्रा की गोद में विश्राम किया । मेवाड़ अनाथ होमया । राजपूत जाति का गौरव बिलीन होगया हिन्दुओं का एक मात्र रक्षक उठ गया ।

जाओ प्रताप ! भले ही जाओ !! पर स्वर्ग में से एक बार भाँककर अपनी भारतमाता की ओर देखो तो सही आज भी भारत माता तुम्हारे लिये रो रही है—

“ कोऊ नहिं पकरत मेरो हाथ

बीस कोठि सुत होत फिरत मैं हा हा हुई अनाथ ।

जाकी सरन गहत सोई मारत सुनत न कोउ दुखबात ॥

दोन बन्यौ इत सौं उत डोलत टकरावत निज माथ ।

दिन दिन बिपति बढ़त सुख छीजत दैत कोऊ नहिं साथ ॥

सब बिधि दुख सागर में डूबत धाय उबारो नाथ ॥ ”

भारतमाता का यह आर्त्तनाद आपके कान में पहुँचे या नहीं पर आपकी कीर्ति अनन्त है । जब तक यह संसार है, तब तक प्रताप का यश सौरभ दिगदिगान्त व्यापी रहेगा । जननी की वियोग वेदना में बहुत मनुष्यों को विह्वल होते देखा है परन्तु जन्मभूमि के लिये आपके समान कष्ट सहन करने वाले बिरले ही होते हैं ? आज घीरेन्द्र प्रताप इस संसार में नहीं है पर उनकी कीर्ति अमर है । न अकबर है, न प्रतापसिंह है, न है मानसिंह पर आज तक आदर भाव से प्रताप के नाम

के जाते हैं वरुण हरिश्चन्द्र ।



की माला जपी जाती है अकबर और मानसिंह को कोई पूछता भी नहीं है। प्रताप की वीरता के सम्बन्ध में अधिक क्या कहा जाय और अधिक कहने की किसी में शक्ति नहीं है। प्रताप का चरित मातृ पूजा का आदर्श है। स्वदेश भक्ति का ज्वलन्त दृष्टान्त है। चाहे गिरिराज हिमालय अपने स्थान से खिसक जाय, चाहे सूर्य भगवान अपनी गति छोड़ दें, चाहे भारत महासागर का सम्पूर्ण जल भी भारतवर्ष को डूबो दे तो भी प्रताप की अनन्त कीर्ति मिट नहीं सकती। अरावली पर्वत की गुफाएं और सब ऊपरी भाग वीरेन्द्र प्रतापसिंह के गौरव का स्मरण दिलाते हैं यह गौरव का विजय स्तम्भ चिरकाल तक ऊंचा रह कर मेवाड़ के बीरों को वीरेन्द्र प्रताप की महिमा का स्मरण दिलाते रहेंगे। जिस जाति में महाराणा प्रताप, गुरु गोविन्दसिंह बन्दा बहादुर शिवाजी आदि महापुरुष पैदा हुए हैं वह जाति कदापि नहीं मर सकती है। चाहे वह थोड़े काल तक खिसकती जरूर रहे। हिन्दू जाति ! इस समय तेरी चाहे जैसी खोजगति हो गई हो पर अभी तेरे निराशा होने का समय नहीं आया है।

वीरपूजा के प्रेमियों ! प्रति वर्ष महाराणा प्रतापसिंह की जन्मगांठ मनाओ प्रति वर्ष उनकी स्मृति मनाओ नित्य नित्य अपने घरों में प्रताप-चरित्र की चर्चा करो जिससे सच्ची वीरता हो।